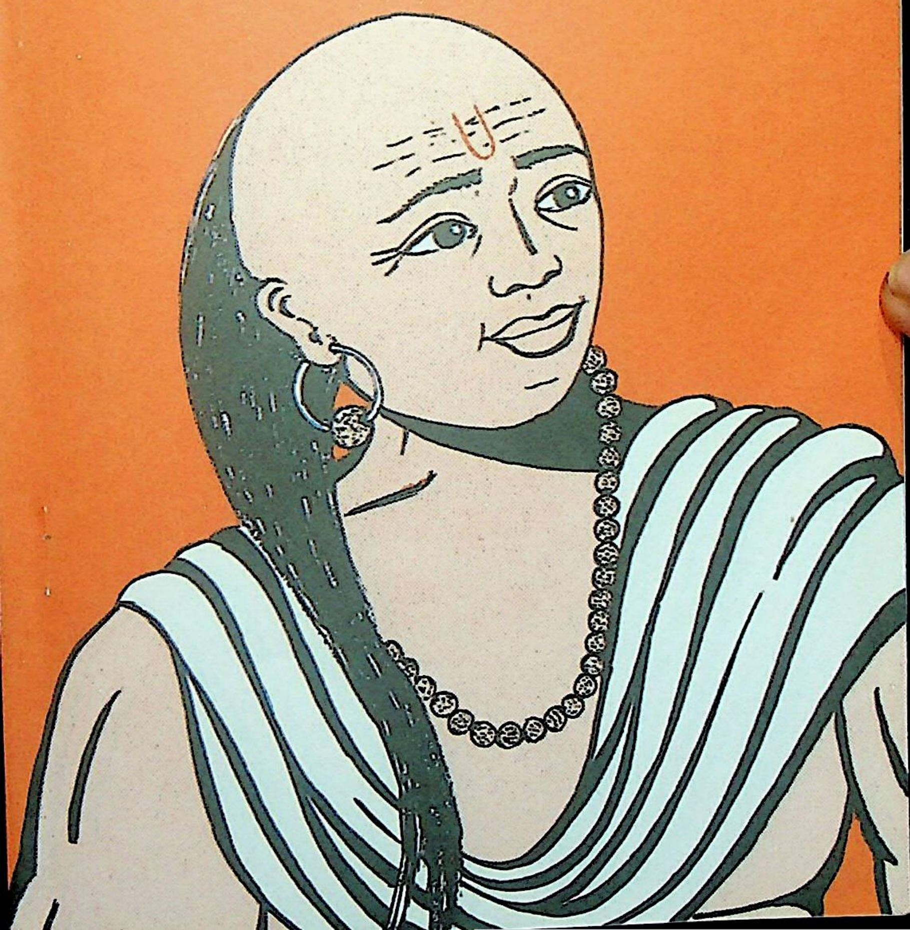
चाणक्यनीतिदर्पण



श्रीः

श्रीचाणक्यविरचितः

चाणक्यनीतिदर्पणः

पंडितमिहिरचन्द्रशर्मनिर्मित

पद्यगद्यहिन्दीटीकासहितः

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : सितंबर २०१५, सवंत् २०७२

मूल्य : ६० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,™

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,

मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers

Khemraj Shrikrishnadass

Prop: Shri Venkateshwar Press

Khemraj Shrikrishnadass Marg,

7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com

E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estat Pune -411 013.

श्रीगणेशाय नमः

चाणक्यनीतिदर्पणः

हिन्दीटीकासहितः

(पूर्वार्द्धम्)

प्रथमोऽध्यायः १

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥ १ ॥

सोरठा—करि शिरसन परनाम, त्रिभुवनपति जगदीशको ।
कहिहौं नीति ललाभ, शास्त्रनसे संग्रह किये ॥१॥

भा. टी.—तीनों लोकोंके पालन करनेवाले सर्वशक्तिमान् विष्णु को शिरसे प्रणाम करके अनेक शास्त्रोंमेंसे निकालकर "रा[1]जनीतिसमुच्चय" नामक ग्रंथको कहता हूं ॥१॥

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यं शुभाशुभम् ॥ २ ॥

सोरठा—यथाशास्त्र पढ़िवेसु, मानुष या कह जानही ।
विदित धर्म उपदेश, कार्याकार्यहि शुभ अशुभ ॥२॥

जो इसको विधिवत् पढ़कर धर्मशास्त्रमें प्रसिद्ध शुभकार्य और अशुभ कार्यको जानता है वह अति उत्तम गिना जाता है ॥२॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

---

१ इसको चाणक्यकृत होनेसे चाणक्यनीतिदर्पण कहते हैं ।

सोरठा—कहिहौं आछे तौन, लोगनके मैं हेतुहित।
जानत मात्रहि जौन, प्राप्त होय सर्वज्ञता ।।३।।

मैं लोगोंके हितकी वांछासे उसको कहूंगा, जिसके ज्ञानमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है ।।३।।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुखितः संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥ ४ ॥

दोहा—दुष्टतिया पोषण किये, मूर्ख शिष्य उपदेश।
औ दुखियन व्योहारसे, विबुधहु लगैं कलेश ।।४।।

निर्बुद्धि शिष्यको पढ़ानेसे, दुष्ट स्त्रीके पोषणसे और दुःखियोंके साथ व्यवहार करनेसे पंडित भी दुःख पाता है ।।४।।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥ ५ ॥

दोहा—दुष्टा भार्या मित्र शठ, उत्तरदायक दासु।
तासु मृत्यु संशय नहीं, सर्पवास गृह जासु ।।५।।

दुष्ट स्त्री, शठमित्र, उत्तर देनेवाला दास और सांप रहनेवाले घरमें वास ये मृत्युस्वरूपही हैं इसमें संशय नहीं ।।५।।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ ६ ॥

दोहा—विपतिहेतु रक्षै धनहि, धनते रक्षै नारि।
रक्षै दारा धनहिते, आतम नित्य विचारि ।।६।।

आपत्ति निवारण करनेके लिये धनको बचाना चाहिये, धनसे भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिये, सब कालमें स्त्री और धनसे अपनी रक्षा करनी उचित है ।।६।।

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः सञ्चितापि विनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा—आपदहित धन राखिये, धनिहि आपदा कौन ।
संचितहू नशि जात है, जो लक्ष्मी करु गौन ॥७॥

विपत्ति निवारणके लिये धनकी रक्षा करनी उचित है, श्रीमानोंको भी क्या आपत्ति आती है ? हां कदाचित् दैवयोगसे लक्ष्मी चलित हो तो संचित भी नष्ट हो जाती है ॥७॥

यस्मिन्देशे न संमानो न वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥ ८ ॥

दोहा—नहिं वृत्ति नहिं बंधु है, नहीं मान जेहि देश ।
विद्याहू आगम नहीं, तहां वास नहिं वेश ॥८॥

जिस देशमें न आदर, न जीविका, न बंधु, न विद्याका लाभ है वहां वास नहीं करना चाहिये ॥८॥

धनिकः श्रोतियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

दोहा—भूप नदी वेदज्ञ धनि, पंचयें वैद्य गनाय ।
ये पांचों जहं नहिं तहां, वसिय न दिवसहु जाय ॥९॥

धनिक, वेदका ज्ञाता ब्राह्मण, राजा, नदी और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान नहीं हैं तहां एक दिनभी वास नहीं करना चाहिये ॥९॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र सङ्गतिम् ॥ १० ॥

दोहा—भली जीविका लाज भय, और दक्षता दान ।
ये पांचों जहं नहिं तहां, करै न संग सुजान ॥१०॥

जीविका, भय, लज्जा, कुशलता, देनेकी, प्रकृति जहां ये पांच नहीं वहां के लोगोंके साथ संगति न करनी चाहिये ॥१०॥

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रं चापत्तिकाले तु भार्यां च विभवक्षये ॥ ११ ॥

दोहा–परिखिय सेवक पठै करि, बंधु व्यसनको पाय ।
विपति परे पर मित्र कहुं, तिय जब विभव नशाय ॥११॥

काममें लगानेपर सेवकोंकी, दु:ख आनेपर बांधवोंकी, विपत्तिकालमें मित्रकी और विभवके नाश होनेपर स्त्रीकी परीक्षा हो जाती है ॥११॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ १२ ॥

दोहा–आतुरता दुखहू परे, शत्रुसंकटो पाय ।
राजद्वार मसानमें, साथ रहै सो भाय ॥१२॥

आतुर होनेपर, दु:ख प्राप्त होनेपर, काल पड़नेपर, वैरियोंसे संकट आने पर, राजाके समीप और श्मशानपर जो साथ रहता है वही बंधु है ॥१२॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव हि ॥ १३ ॥

दोहा–जो ध्रुव वस्तुन त्यागिकै, रहै अध्रुव हि सेइ ।
ध्रुवहु तासु नशि जात है, अध्रुव रह्यो नसेइ ॥१३॥

जो निश्चित वस्तुओंको त्यागकर अनिश्चितकी सेवा करता है उसके निश्चित वस्तुओंका नाश हो जाता है अनिश्चित तो नष्टही है ॥१३॥

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥ १४ ॥

दोहा–कन्या वरै कुलीनकी, यदपि रूपकी हान ।
रूपशील नहिं नीचकी, कीजै व्याह समान ॥१४॥

बुद्धिमान उत्तम कुलकी कन्या कुरूपा भी हो उसको वरै, नीच कुलकी सुंदरी हो तो भी उसको नहीं वरै. इस कारण कि, विवाह तुल्य कुलमें विहित है ॥१४॥

नखिनां च नदीनां च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ १५ ॥

दोहा—सींग और नहके पशुन, शस्त्र लिये जो होय ।
नदी राजकुल अरु तियन, मत विसवासो कोय ॥१५॥

नदियोंका, शस्त्रधारियोंका, नखवाले और शींगवाले जीवोंका, स्त्रियोंमें और राजकुलपर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥१५॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ १६ ॥

दोहा—अमिय लीजिये विषहुसे, अशुचिहुमेंते सोन ।
नीचहुते विद्या भली, दुष्ट कुलहु तिय लोन ॥१६॥

विषमेंसे अमृतको, अशुद्ध पदार्थोंमेंसे भी सोनेको नीचसे भी उत्तम विद्याको और दुष्टकुलसे भी स्त्री रत्नको लेना योग्य है ॥१६॥

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥१७॥

दोहा—नारिनमें भोजन दुगुन, लज्जा चौगुन होइ ।
छःगुन साहस होत हैं, काम अठगुना गोइ ॥१७॥

पुरुषसे स्त्रियोंका आहार दूना, लज्जा चौगुनी, साहस छः गुना और काम आठ गुना अधिक होता है ॥१७॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः २

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥१॥

दोहा–तिरियन होत स्वभावसे, माया साहस झूंठ।
निर्दय अशुचि कंजूसपन, और गुणन में झूंठ ।।१।।

असत्य, विना विचार किसी काममें झटपट लगजाना, छल, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं ।।१।।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥ २ ॥

दोहा–भोज्यवस्तु भोजनसकति, सुंदर सुरति उमङ्ग।
विभव दानसामरथिहू, मिलै वड़े तपसङ्ग ।।२।।

भोजनके योग्य पदार्थ, भोजनकी शक्ति, सुंदर स्त्री और रतिकी शक्ति ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोड़े तपका फल नहीं हैं ।।२।।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥ ३ ॥

दोहा–नारी इच्छागामिनी, पुत्र होइ वश जाहि।
विभव पाइ सन्तोष जेहि, इहै स्वर्ग है ताहि ।।३।।

जिसका पुत्र वशमें रहता है और स्त्री इच्छाके अनुसार चलती है और जो विभवमें संतोषयुक्त रहता है उसका स्वर्ग यहां ही है ।।३।।

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥ ४ ॥

दोहा–सो सुत जो पितुभक्त है, जो पालै पितु सोय।
मित्र सोइ विश्वास जहं, तिय सोइ जहं सुख होय ।।४।।

वही पुत्र है जो पिताका भक्त है, वही पिता है जो पालन करता है, वही मित्र है जिसपर विश्वास है, वही स्त्री है जिससे सुख प्राप्त होता है ।।४।।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ५ ॥

दोहा—पाछे काम नशावही, मुखपर मीठे बैन ।
वरजै ऐसे मित्रको, पयमुख घटविष ऐन ॥५॥

आंखके ओट होनेपर काम विगाड़े, सन्मुख होनेपर मीठी २ बात बनाकर कहे ऐसे मित्रको मुंहड़ेपर दूधसे और सब विषसे भरे घड़ेके समान छोड़ देना चाहिये ॥ ५ ॥

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा—विश्वासौ नहिं मित्रको, त्यों कुमित्रहू पास ।
रूठ्यो मित्र कदापि तो, कुरु सब मर्म प्रकास ॥६॥

कुमित्रपर विश्वास तो किसी प्रकारसे नहीं करना चाहिये और सुमित्रपर भी विश्वास न रक्खे, इसका कारण यह कि, कदाचित् मित्र रुष्ट होय तो सब गुप्त बातोंको प्रसिद्ध कर दे ॥६॥

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् ।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्यं चापि नियोजयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—मनके सोचे कामका, नाहिन करै प्रकाश ।
मंत्र सरिस रक्षा करै, काम बनावै खास ॥७॥

मनसे सोचे हुए कामका प्रकाश वचनसे न करे किंतु मंत्रसे उसकी रक्षा करे और गुप्तही उस कार्यको काममें भी लावे ॥७॥

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम् ।
कष्टात्कष्टतरं चैव परगेहनिवासनम् ॥ ८ ॥

दोहा—मूरखता अरु तरुणता, हैं दोऊ दुखदाय ।
परघर वसिबो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ॥८॥

मूर्खता दुःख देती है और युवापन भी दुःख देता है परंतु दूसरेके गृहका वास तो बहुतही दुःखदायक होता है ॥८॥

शैलेशैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ ९ ॥

दोहा—शैल शैल माणिक नहीं, गज गज मुक्ता नाहिं ।
वन वनमें चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहिं ॥९॥

सब पर्वतोंपर माणिक्य नहीं होता और मोती सब हाथियोंमें नहीं मिलता साधुलोग सब स्थानोंमें नहीं मिलते और सब वनोंमें चंदन नहीं होता ॥९॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः ।
नीतिज्ञाः शीलसंपन्ना भवंति कुलपूजिताः ॥ १० ॥

दोहा—पुत्रहि शिखवै शीलको, बुधजन नानारीति ।
कुलमें पूजित होत है, शील सहित जो नीति ॥१०॥

बुद्धिमान लोग लड़कोंको नानाभांतिकी सुशीलतामें लगावें इस कारख कि, नीतिके जाननेवाले यदि शीलवान् होंय तो कुलमें पूजित होते हैं ॥१०॥

माता रिपुः पिता शत्रुर्बालो याभ्यां न पाठ्यते ।
सभामध्ये न शोभेत हंसमध्ये बको यथा ॥ ११ ॥

दोहा—ते माता पितु शत्रुसम, सुत न पढ़ावैं जौन ।
राजहंसमधि बकसरिस, सभा न शोभित तौन ॥११॥

वह माता शत्रु और पिता वैरी है, जिन्होंने अपने बालक न पढ़ाये इस कारण कि, सभाके बीच वे ऐसे नहीं शोभते जैसे हंसोंके बीच बगुला ॥११॥

लालनाद्बहवो दोषास्ताडनाद्बहवो गुणाः ।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्नतु लालयेत् ॥ १२ ॥

दोहा—प्यार किये बहु दोष हैं, दंड किये बहु सार ।
पुत्र शिष्यहूको करै, ताते दंड विचार ॥१२॥

दुलारनेसे बहुत दोष होते हैं और दंड देनेसे बहुत गुण हैं इस हेतु पुत्र और शिष्यको दंड देना उचित है लालन नहीं ॥१२॥

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धाक्षरेण वा ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥ १३ ॥

दोहा–श्लोक एक वा आध वा, तासु आध तेहि आध ।
दिन स्वारथ करि अक्षरै, पठन दान कृत साथ ॥१३॥

श्लोक वा श्लोकके आधेको अथवा आधेमेंसे आधेको प्रतिदिन पढ़ना उचित है, इस कारण कि, दान अध्ययन आदि कर्मसे दिनको सार्थक करना चाहिये ॥१३॥

कान्तावियोगः स्वजनापमानो
रणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ।
दरिद्रभावो विषमा सभा च
विनाऽग्निनैते प्रदहन्ति कायम् ॥ १४ ॥

दोहा–युद्धशेष प्यारी विरह, दरिद बंधुअपमान ।
दुष्टराज खलकी सभा, दाहत विनहि कृशान ॥१४॥

स्त्रीका विरह, अपने जनोंसे अनादर, युद्ध करके बचा शत्रु, दुष्ट राजाकी सेवा, दरिद्रता और दुष्टोंकी सभा ये विना आगही शरीरको जलाते हैं ॥१४॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ॥ १५ ॥

दोहा–नदीतीरके वृक्ष, औ, राजा मंत्री हीन ।
नष्ट होय परघर तिया, अवशि शीघ्र ही तीन ॥१५॥

नदीके तीरके वृक्ष, दूसरेके गृहमें जानेवाली स्त्री, मंत्री रहित राजा, निश्चय है कि, ये तीनों शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा ।
बलं वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां च कनिष्ठिका ॥ १६ ॥

दोहा—विद्या बल है विप्रको, राजाको बल सैन ।
धन वैश्यन बल शूद्रको, सेवाही बल ऐन ॥१६॥

ब्राह्मणोंके बल विद्या है वैसेही राजाका बल सेना, वैश्योंका बल धन और शूद्रोंका बल सेवा ॥१६॥

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत् ।
खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा अभ्यागता गृहम् ॥ १७ ॥

दोहा—करि भोजन गृह अतिथिजन, प्रजा निर्बल नृप जानि ।
फल विहीन तरु खग तर्जहिं, वेश्या धन विनु मानि ॥१७॥

वेश्या निर्धन पुरुषको, प्रजा शक्तिहीन राजाको, पक्षी फलरहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड़ देते हैं ॥१७॥

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम् ।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्या दग्धारण्यं मृगास्तथा ॥ १८ ॥

दोहा—यजमानहि द्विज दान लहि गुरु शिष विद्या पाय ।
जरे वनहुको मृग तर्जहिं, नीति कहत अस गाय ॥१८॥

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमानको त्याग देते हैं, शिष्य विद्या प्राप्त होने पर गुरुको, वैसेही जरेहुए वनको मृग छोड़ देते है ॥१८॥

दुराचारी दुष्टदृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः ।
यन्मैत्री क्रियते पुंसा स तु शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा—दुराचारि दुर दृष्टि हू, दुर्जन दुस्थल वास ।
उनते जो संगति करै, तासु वेगही नास ॥१९॥

जिसका आचरण बुरा है, जिसकी दृष्टि पापमें रहती है, बुरे स्थानमें बसने-

वाला और दुर्जन इन पुरुषोंकी मैत्री जिसके साथ की जाती है वह शीघ्रही नष्ट हो जाता है ।।१९।।

समाने शोभते प्रीती राज्ञि सेवा च शोभते ।
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ।। २० ।।

दोहा—नृपमें सेवा सोहती, सोहति प्रीति समान ।
वनिआई व्यवहारमें, गृहमें तिय गुणवान ।।२०।।

समानमें प्रीति शोभती है और सेवा राजाकी शोभती है व्यवहारोंमें बनियाई और घरमें दिव्य सुंदर स्त्री शोभती है ।।२०।।

इति द्वितीयोध्यायः ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः ३

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना केन पीडिताः ।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ।। १ ।।

दोहा—केहिके कुलमें दोष नहिं, व्याधि न पीडित कौन ।
दुख पायो नहिं कौन वह, नित सुख काके भौन ।।१।।

किसके कुलमें दोष नहीं है ? व्याधिने किसे पीडित न किया ? किसको न दुःख मिला ? किसको सदा सुखही रहा ।।१।।

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ।
संभ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।। २ ।।

दोहा—आचारै कुल कहँ कहत, बोल कहत है देश ।
संभ्रम प्रीतिहि कहत है, तन भोजनहि हमेस ।।२।।

आचारकुलको बतलाता है, बोली देशको जनाती है, आदर प्रीतिका प्रकाश करती है, शरीर भोजन को जनाता है ।।२।।

सत्कुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मेण योजयेत् ॥ ३ ॥

दोहा–कन्या सतकुल व्याहिये, विद्या सुतहिं पढाइ ।
शत्रुहि पीडै मित्र कहं, दीजै धर्म लगाइ ।।३।।

कन्याको श्रेष्ठ कुलवालेको देनी चाहिये, पुत्रको विद्यामें लगाना चाहिये, शत्रुको दुःख पहुंचाना उचित है और मित्रको धर्मका उपदेश करना चाहिये ।।३।।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पो दशति काले तु दुर्जनस्तु पदेपदे ॥ ४ ॥

दोहा–खलहु सर्प इन दुहुनमें, भला सर्प खल नाहिं ।
सर्प डसत है कालमें, खल जन पदपद माहिं ।।४।।

दुर्जन और सर्प इनमें सांप अच्छा, दुर्जन नहीं, इस कारण कि, सांप काल आनेपर काटता है, खल तो पदपदमें ।।४।।

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥ ५ ॥

दोहा–भूप कुलीननको करे, संग्रही याही हेत ।
आदि मध्य औ अंतमें, नृपहि न ते तजि देत ।।५।।

राजालोग कुलीनोंका संग्रह इस निमित्त करते हैं कि, ये आदि अर्थात् उन्नति, मध्य अर्थात् साधारण और अंत अर्थात् विपत्तिमें राजाको नहीं छोड़ते ।।५।।

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥ ६ ॥

दोहा–मर्यादा सागर तजैं, प्रलय होनके काल ।
उत साधू छोडें नहीं, सदा आपनी चाळ ।।६।।

समुद्र प्रलयमें अपनी मर्यादाको छोड़ देते हैं और सागर भेदकी इच्छा भी रखते हैं, परंतु साधु लोग प्रलय होनेपर भी अपनी मर्यादाको नहीं छोड़ते ।।६।।

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिनत्ति वाक्यशल्येन अदृशं कण्टको यथा ॥७॥

दोहा—मूरखको तजि दीजिये, प्रगट द्विपद पशु जान ।
वचन शल्यते वेधहीं, अंधहि कांट समान ॥७॥

मूर्खको दूर करना उचित है, इस कारण कि, देखनेमें वह मनुष्य है, परंतु यथार्थ देखे तो दो पांवका पशु है, और वाक्यरूप शल्यसे वेधता है जैसे अंधेको कांटा।७॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥८॥

सोरठा—विद्या विन कुलमान, यदपि रूपयौवन सहित ।
सुमन पलाश समान, सोह न सौरभके विना ॥८॥

सुंदरता, तरुणता और बड़े कुलमें जन्म इनके रहते भी विद्याहीन पुरुष विना गंध पलाश (ढाक) के फूलके समान नहीं शोभते ॥८॥

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥ ९ ॥

दोहा—रूप कोकिलन स्वर तियन, पति व्रत रूप अनूप ।
विद्यारूप कुरूपको, क्षमा तपस्विन रूप ॥९॥

कोकिलोंकी शोभा स्वर है, स्त्रियोंकी शोभा पातिव्रत्य, कुरूपोंकी शोभा विद्या है, तपस्वियोंकी शोभा क्षमा है ॥९॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थेकुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत् ॥ १० ॥

दोहा—एक तजै कुल अर्थ लगि, ग्राम कुलहुको अर्थ ।
तजै ग्राम देशार्थ लगि, देशौ आतम अर्थ ॥१०॥

कुलके निमित्त एकको छोड़ देना चाहिये ग्रामके हेतु कुलका त्याग उचित है, देशके अर्थ ग्रामका और अपने अर्थ पृथिवीका अर्थात् सबका त्याग ही उचित है ॥१०॥

उद्योगे नास्तिदारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरिते भयम् ॥११॥

दोहा—नहिं दरिद्र उद्योगपर, जपते पातक नाहिं ।
कलह रहै नहिं मौनमें, नहिं भय जागत माहिं ॥११॥

उपाय करनेपर दरिद्रता नहीं रहती, जपनेवालोंको पाप नहीं रहता, मौन होनेसे कलह नहीं होता और जागने वालेके निकट भय नहीं आता ॥११॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः ।
अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यतिसर्वत्र वर्जयेत ॥ १२ ॥

दोहा—अतिछबि सीताहरण भो, नशि रावण अति गर्व ।
अतिहि दानते बलि बंधे, अति तजिये थल सर्व ॥१२॥

अतिसुंदरताके कारण सीता हरी गई, अतिगर्वसे रावण मारा गया, बहुत दान देकर बलिको बंधना पड़ा इस हेतु अतिको सब स्थलमें छोड़ देना चाहिये ॥१२॥

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां कोऽप्रियः प्रियवादिनाम् ॥१३॥

दोहा—उद्योगहि कछु दूर नहिं, बलिहि न भार विशेष ।
प्रियवादिन अप्रिय नहिं, बुधहि न कठिन विदेश ॥१३॥

समर्थको कौन वस्तु भारी है, काममें तत्पर रहनेवालेको क्या दूर है, सुंदर विद्यावालोंको कौन विदेश है, प्रियवादियोंको अप्रिय कौन है ॥१३॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ १४ ॥

दोहा—एक सुगंधित वृक्षसे, सब वन होत सुवास ।
जैसे कुल शोभित अहै, सहि सुपुत्र गुणरास ॥१४॥

एक भी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुंदर फूल और गंध है उससे सब वन सुवासित हो जाता है जैसे सुपुत्रसे कुल ॥१४॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं तथा ॥ १५ ॥

दोहा–सूख जरत इक तरुहिते, जस लागत वन डाह ।
कुलको दाहक होत है, तस कुपूतकी वाढ़ ॥१५॥

आगसे जलते हुए एकही सूखे वृक्षसे वह सब वन ऐसे जल जाता है जैसे कुपुत्रसे कुल ॥१५॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥ १६ ॥

सोरठा –एकहु सुत जो होय, विद्यायुत औ साधुचित ।
आनंदित कुल सोय, यथा चंद्रमासे निशा ॥१६॥

विद्यायुक्त भले एक भी सुपुत्रसे सब कुल ऐसे आनंदित हो जाता है जैसे चंद्रमासे रात्रि ॥१६॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥ १७ ॥

दोहा–करनहार संताप सुत, जनमें कहा अनेक ।
देइ कुलहि विश्राम जो, श्रेष्ठ होय वरु एक ॥१७॥

शोक संताप करनेवाले उत्पन्न बहुपुत्रोंसे क्या कुलको सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठ है जिसमें कुल विश्राम पाता है ॥१७॥

लालयेत्पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

दोहा–पंचवर्षलौ लालिये, दशलौं ताडन देइ ।
सुतहि सोलवें वर्षमें, मित्र सरिस गनि लेइ ॥१८॥

पुत्रको पांच वर्ष तक दुलरावे, उपरांत दस वर्षपर्यंत ताडन करे, सोलहवें वर्षकी प्राप्ति होनेपर पुत्रसे मित्रसमान आचरण करे ॥१८॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधुजनसंपर्के यः पलायति जीवति ॥ १९ ॥

दोहा—काल उपद्रव संग शठ, अन्न राज भय होय ।
तेहि थलते जो भागि है, जीवत बचिहै सोय ।।१९।।

उपद्रव उठनेपर, शत्रुके आक्रमण करनेपर भयानक अकाल पड़नेपर और खलजनके संग होनेपर जो भागता है वह जीवता रहता है ।।१९।।

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
फलं जन्म हि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥ २० ॥

दोहा—धर्म अर्थ कामादिमें, अहै न एको जाय ।
जन्म भयेको फल मिल्यो, केवल मरणहि ताहि ।।२०।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जिसको कोई भी ना भया उसको मनुष्योंमें जन्म होनेका फल केवल मरणही हुआ ।।२०।।

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धन्यं यत्र सुसंचितम् ।
दाम्पत्यकलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥ २१ ॥

दोहा—जहां अन्न संचित रहे, मूर्ख मान नहिं पाव ।
दंपतिमें जहं कलह नहिं, संपति आपुइ आव ।।२१।।

जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते जहां अन्न संचित और जहां स्त्रीपुरुषों में कलह नहीं होता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है ।।२१।।

इति तृतीयाऽध्यायः ।।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ १ ॥

सोरठा—आयुर्बल और कर्म, धन विद्या अरु मरण ये ।
नीति कहत अस मर्म, गर्भहिमें लिखि जात हैं ।।१।।

यह निश्चय है कि, आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांचों जब जीव गर्भहीमें रहता है तबही लिख दिये जाते हैं ।।१।।

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रा मित्राणि बान्धवाः ।
ये च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतं कुलम् ॥ २ ॥

दोहा—बांधव जन सुत मित्र वे, रहत साधु प्रतिकूल ।
ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, जो इनके अनुकूल ।।२।।

पुत्र, मित्र, बंधु ये साधुजनोंसे निवृत्त हो जाते हैं और जो उनका संग करते हैं उनके पुण्यसे उनका कुल सुकृती हो जाता है ।।२।।

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः ॥ ३ ॥

दोहा—मच्छी, पंछी, कच्छपी, दरस परस करि ध्यान ।
शिशु पालै नित तैसही, सज्जन संग प्रमान ।।३।।

मछली कछुई और पक्षी ये दर्शन, ध्यान और स्पर्शसे जैसे बच्चोंको सर्वदा पालती हैं वैसेही सज्जनोंकी संगति ।।३।।

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यति ॥ ४ ॥

दोहा—जौलों देह समर्थ है, जबलौं मरिवो दूरि ।
तौलों आतम हित करै प्राण अंत सब पूरि ।।४।।

जब लग देह नीरोग है जब लग मृत्यु दूर है तावत्पर्यन्त अपना हित पुण्यादि करना उचित है, प्राणके अंत हो जाने पर कोई क्या करेगा ।।४।।

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्यागुप्तं धनं स्मृतम् ॥ ५ ॥

दोहा–बिन औसरहू देत फल, कामधेनुसम नित्त ।
मातासी परदेशमें, विद्या संचित वित्त ।।५।।

विद्यामें कामधेनुके समान गुण है इस कारण कि, अकालमें फल देती है, विदेशमें माताके समान है विद्याको गुप्त धन कहते हैं ।।५।।

एकोऽपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः ॥ ६ ॥

दोहा–सौ निर्गुनियनसे अधिक, एक पुत्र सुविचार ।
एक चन्द्र तमको हरै, तारा नहीं हजार ।।६।।

एकभी गुणी पुत्र सैकड़ों गुणरहितोंसे श्रेष्ठ है जैसे एकही चंद्र अंधकारको नष्ट कर देता है, सहस्र तारे नहीं ।।६।।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः ।
मृतस्तु चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ७ ॥

दोहा–मूर्ख चिरायुनसे भलो, जन्मतही मरि जाय ।
मरे अल्प दुख होइहै, जिये सदा दुखदाय ।।७।।

मूर्ख जन्मा चिरंजीवी भी हो उससे उत्पन्न होते ही जो मर गया वह श्रेष्ठ है। इस कारण कि, मरा थोड़ेही दुःखका कारण होता है, जड़ जबलों जीता है तबलों दाहता है ।।७।।

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।

पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥ ८ ॥

दोहा–घर कुगांव सुत मूढ तिय, खल नीचनि सेवकाय ।
कुभख सुता विधवा छवों, तन विनु अग्नि जराय ॥८॥

कुग्राममें वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या ये छः विना आगही शरीरको जलाते हैं ॥८॥

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गुर्विणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥ ९ ॥

दोहा–कहा होय तेहि धेन जो, दूध न गाभिन होय ।
कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न जोय ॥९॥

उस गायसे क्या लाभ है जो न दूध देवे, न गाभिन होवे और ऐसे पुत्र हुएसे क्या लाभ जो न विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥९॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च ॥ १० ॥

दोहा–यह तीनै विश्राम, माहिं तपन जगतापमें ।
हरें घोर भव धाम, पुत्र नारि सतसंग पुनि ॥१०॥

संसारके तापसे जलते हुए पुरुषोंके विश्रामके हेतु तीन हैं लड़का, स्त्री और सज्जनोंकी संगति ॥१०॥

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥११॥

दोहा–भूपति औ पंडित वचन, औ कन्याको दान ।
एकै एकै बार ये, तीनों होत समान ॥११॥

राजा लोग एकही वार आज्ञा देते हैं पण्डित लोग एकही वार बोलते हैं, कन्याका दान एकही बार होता है, ये तीनों बातें एकही बार होती हैं ॥११॥

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

दोहा–तप एकहि द्वैसे पठन, गान तीनि पथ चारि ।
कृषी पांच रण बहुत मिलि, अस कह शास्त्र विचारि ॥१२॥

अकेलेसे तप, दोसे पढ़ना, तीनसे गाना, चारसे पन्थमें चलना, पांचसे खेती और वहुतोंसे युद्ध भलीभांतिसे बनते हैं ॥१२॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ॥१३॥

दोहा–सत्य मधुरभाषै वचन, और चतुर शुचि होय ।
पति प्यारी औ पतिव्रता, तिया जानिये सोय ॥१३॥

वही भार्या है जो पवित्र और चतुर है, वही भार्या है जो पतिव्रता है वही भार्या है जिसपर पतिकी प्रीति है, वही भार्या है जो सत्य बोलती है अर्थात् दान मान पोषण पालनके योग्य वही है ॥१३॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता ॥ १४ ॥

दोहा–है अपुत्रका सून घर, बांधव विन दिशि सून ।
मूरखको हिय सून है, दारिदको सब सून ॥१४॥

निपुत्रीका घर सूना है, बंधुरहितकी दिशा शून्य है मूर्खका हृदय शून्य है और सर्वशून्य दरिद्रता है ॥१४॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम् ।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥१५॥

दोहा–भोजन विष है विनु पचे, शास्त्र विना अभ्यास ।
सभा गरलसम रंककी, बूढ़हि तरुनी पास ॥१५॥

विना अभ्याससे शास्त्र विष होजाता है, विना पचे भोजन विष हो जाता है, दरिद्रोंकी गोष्ठी विष और वृद्धको युवती विष जान पड़ती है ॥१५॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् ॥१६॥

दोहा—दया रहित धर्महि तजै, और गुरु विद्या हीन ।
क्रोधमुखी तिय प्रीतिविनु, बांधव तजै प्रवीन ॥१६॥

दयारहित धर्मको छोड़ देना चाहिये, विद्याहीन गुरुका त्याग उचित है जिसके मुंहसे क्रोध प्रकट होता हो ऐसी भार्याको अलग करना चाहिये और विना-प्रीति बांधवोंका त्याग विहित है ॥१६॥

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बन्धनं जरा ।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥१७॥

दोहा—पंथ बुढाई नरनकी, हयन बंध इक थाम ।
जरा अमैथुन तियन कहं, औ वस्त्रनको घाम ॥१७॥

मनुष्योंको बूढ़ापन पंथ है घोड़ेको बांध रखना वृद्धता है, स्त्रियोंको अमैथुन बूढ़ापन है और वस्त्रोंको घाम वृद्धता है ॥१७॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौव्ययागमौ ।
कस्याहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥१८॥

दोहा—हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरु देश ।
लाभखर्च का मित्रको, चिंता करै हमेश ॥१८॥

किस कालमें क्या करना चाहिये, मित्र कौन है, देश कौन है, लाभ व्यय क्या है, किसका मैं हूं, मुझमें क्या शक्ति है ये सब बार बार विचारना योग्य है ॥१८॥

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥१९॥

दोहा–ब्राह्मण क्षत्री वैश्यको, अग्नि देवता और।
मुनिजन हिय मूरति अबुध, समदर्शिन ठौर ॥१९॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इनका देवता अग्नि है मुनियोंके हृदयमें देवता रहते हैं, अल्पबुद्धियोंको मूर्तिमें और समदर्शियोंके सब स्थानमें देवता हैं ॥१९॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥१॥

दोहा–अभ्यागत सबको गुरू, नारी गुरु पति जान।
द्विजन अग्निगुरु चारिहू, वरन विप्र गुरु मान ॥१॥

स्त्रियोंका गुरु पतिही है, अभ्यागत सबका गुरु है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनका गुरु अग्नि है और चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है ॥१॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥२॥

दोहा–जिमि तपाय घसि काटि पिटि, सुवरन लख विधि चारि।
त्याग शील गुण कर्म तिमि, चारिहि पुरुष विचारि ॥२॥

घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार प्रकारोंसे जैसे सोनेकी परीक्षा की जाती है वैसेही दान, शील, गुण और आचार इन प्रकारोंसे पुरुषकी भी परीक्षा की जाती है ॥२॥

तावद्भयेषु भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।

आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥ ३ ॥

दोहा—जौलौं भय आवै नहीं, तौलों डरे विचार ।
आये शंका छोड़िकै, चलिये कीन्ह प्रहार ॥३॥

तबतकही भयोंसे डरना चाहिये, जबतक नहीं आवे और आये हुए भयको देखकर प्रहार करना उचित है ॥३॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।

न भवन्ति समाः शीलैर्यथा बदरिकण्टकाः ॥ ४ ॥

दोहा—एकही गर्भ नक्षत्रमें, जायमान यदि होय ।
नहीं शील सम होत है, बेरकांट सम दोय ॥४॥

एकही गर्भसे उत्पन्न और एकही नक्षत्रमें जायमान शीलमें समान नहीं होते जैसे बेर और उसके कांटे ॥४॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः ।

नाविदग्धः प्रियं ब्रूयात्स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥ ५ ॥

दोहा—नहिं निस्पृह अधिकार गहु, नहिं भूषण निहकाम ।
नहिं अचतुर प्रिय बोलु नहिं, वंचक साफकलाम ॥५॥

जिसको किसी विषयकी वांछा न होगी वह किसी विषयका अधिकार नहीं लेगा, जो कामी न होगा वह शरीरकी शोभा करनेवाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रक्खेगा जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥५॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः ।

दुर्भगाणां च सुभगाः कुलटानां कुलाङ्गनाः ॥ ६ ॥

दोहा—मूरख द्वेषी पंडितहि, धनही नहिं धनवान ।
परकीया स्वकीयाहुकी, विधवा सुभगा जान ॥६॥

मूर्ख पण्डितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यभिचारिणी कुलस्त्रियोंसे और विधवा सुहागिनियोंमें बुरा मानती है ।।६।।

आलस्योपहता विद्या परहस्तगतं धनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

दोहा—आलसते विद्या नशै, धन औरनके हाथ ।
अल्पबीजसे खेत अरु, दल दलपति बिनु साथ ।।७।।

आलस्यसे विद्या, दूसरेके हाथमें जानेसे धन, बीजकी न्यूनतासे खेत और सेनापतिके विना सेना नष्ट हो जाती है ।।७।।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥ ८ ॥

दोहा—कुल शीलहिते धारिये, विद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहि श्रेष्ठ कहं, नयनहिं कोपनिवास ।।८।।

अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होता है ।।८।।

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥ ९ ॥

दोहा—विद्या रक्षित योगते, मदुतासे भूपाल ।
रक्षित गेह सुतीयते, धनते धरम विशाल ।।९।।

धनसे धर्मकी, यम नियम आदि योगसे ज्ञानकी, मृदुतासे राजाकी, भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होती है ।।९।।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथा यद्वदच्छान्तं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा ॥ १० ॥

दोहा—वेद शास्त्र आचार औ, शांतहि और प्रकार ।
जो कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ।।१०।।

वेदके पांडित्यको व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उस आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करनेवाला, शांत पुरुषको अन्यथा कहनेवाला ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥१०॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥ ११ ॥

सोरठा—दारिद नाशै दान, शील दुर्गतिहि नाशियत ।
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशत है भावना ॥११॥

दान दरिद्रताका, सुशीलता दुर्गतिका, बुद्धि अज्ञानका और भक्ति भयका नाश करती है ॥११॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ॥१२॥

सोरठा—व्याधि न कोपसों आन, रिपु नहिं दूजो मोहसम ।
अग्नि न काम समान, नहिं ज्ञानसे सुख परै ॥१२॥

कामके समान दूसरी व्याधि नहीं है, अज्ञानके समान दूसरा वैरी नहीं है क्रोधके तुल्य दूसरी आग नहीं है, ज्ञानके तुल्य अन्य सुख नहीं है ॥१२॥

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम् ।
नरकेषु पतत्येक एको याति पराङ्गतिम् ॥ १३॥

सोरठा—जन्म मृत्यु लहु एक, भोगते इक शुभ अशुभ ।
नरक जात है एक, लहत एकही मुक्तिपद ॥१३॥

यह निश्चय है कि, एकही पुरुष जन्म मरण पाता है, सुख दुःख एकही भोगता है, एकही नरकोंमें पड़ता है और एकही मोक्ष पाता है, अर्थात् इन कामोंमें कोई किसीकी सहायता नहीं कर सकता ॥१३॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताशस्य तृणं नारी निस्पृहस्य तृणं जगत् ॥ १४ ॥

दोहा—ब्रह्मज्ञानिहि स्वर्ग तृण, जित इन्द्रिय तृण नार।
शूरहि तृण है जीवनो, निस्पृह कहं संसार ।।१४।।

ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण है, शूरको जीवन तृण है, जिसने इन्द्रियोंको वश किया उसे स्त्री तृणके तुल्य जान पड़ती है, निःस्पृहको जगत् तृण है ।।१४।।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ १५॥

दोहा—विद्या मित्र विदेशमें, घर तिय मीत सप्रीत।
रोगहि औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ।।१५।।

विदेशमें विद्या मित्र होती है, गृहमें भार्या मित्र है, रोगीका मित्र औषध है और मरेका मित्र धर्म है ।।१५।।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च ॥ १६ ॥

दोहा—व्यर्थ वृष्टि समुद्रमें, तृप्तहि भोजन दान।
धनिकहि देनो व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दिनभान ।।१६।।

समुद्रमें वर्षा वृथा है और भोजनसे तृप्तको भोजन निरर्थक है धनीको धन देना व्यर्थ है और दिनमें दीपक व्यर्थ है ।।१६।।

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति चान्नसमं प्रियम् ॥१७॥

दोहा—दूजो जल नहिं मेघसम, बल आतमहि समान।
नहिं प्रकाश है नैनसम, प्रिय अनाज सम आन ।।१७।।

मेघके जलके समान दूसरा जल नहीं होता, अपने बल समान दूसरेका बल नहीं, इस कारण कि, समयपर काम आता है नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश करनेवाला नहीं है और अन्नके सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ।।१७।।

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥१८॥

दोहा–अधनी धनको चाहते, पशू होन वाचाल ।
नर चाहते हैं स्वर्गको, सुरगण मुक्तिविशाल ॥१८॥

धनहीन धन चाहते हैं और पशु वचन, मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं और देवता मुक्तिकी इच्छा रखते हैं ॥१८॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥

दोहा–सत्यहिते रवि तपत है, सत्यहि सब भुवभार ।
बहै पवनहू सत्यते, सत्यहि सब आधार ॥१९॥

सत्यसे पृथ्वी स्थिर है और सत्यसेही सूर्य तपते हैं, सत्यहीसे वायु बहती है, सब सत्यहीसे स्थिर है ॥१९॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥ २० ॥

दोहा–चल लक्ष्मी और प्राणहू, और जीविका धाम ।
येह चलाचल जगतमें, अचल धर्म अभिराम ॥२०॥

लक्ष्मी नित्य नहीं है. प्राण, जीवन, धाम ये सब स्थिर नहीं हैं । निश्चय है कि, इस चराचर संसारमें केवल धर्महो निश्चल है ॥२०॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः ।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥ २१ ॥

दोहा–नरमें नाई धूर्त है, वायस पक्षिन माहिं ।
चौपायनमें स्यार है, मालिनि नारि लखाहिं ॥२१॥

पुरुषोंमें नापित और पक्षियोंमें कौवा वञ्चक होता है पशुओंमें सियार वञ्चक होता है और स्त्रियोंमें मालिनी धूर्त होती है ॥२१॥

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ २२ ॥

दोहा—पितु आचारज अन्नप्रद, भयरक्षक जो कोय ।
विद्यादाता पांच यह, मनुज पिता सम होय ॥२२॥

जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो विद्या देता है, अन्न देनेवाला, भयसे बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥२२॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः ॥ २३ ॥

दोहा—राजतिया औ गुरुतिया, मित्रतियाहू जान ।
निजमाता और सासु ये, पांचों मातु समान ॥२३॥

राजाकी भार्या, गुरुकी स्त्री, ऐसेही मित्रकी पत्नी, सासु और अपनी जननी इन पांचोंको माता कहते हैं ॥२३॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ६

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दोहा—सुनिके जाने धर्मको, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।
सुनिकै पावै ज्ञानहू, सुने मोक्षपद लेत ॥१॥

मनुष्य शास्त्रको सुनकर धर्मको जानता है, दुर्बुद्धिको छोड़ता है, ज्ञान पाता है तथा मोक्ष पाता है ॥१॥

काकः पक्षिषु चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
पापो मुनीनां चाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः ॥ २ ॥

दोहा—वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहै चण्डाल।
मुनियनमें जेहि पाप उर, सबमें निन्दक काल ॥२॥

पक्षियोंमें कौवा और पशुओंमें कुक्कुर चांडाल होता है, मुनियोंमें चांडाल पाप है और सबमें चांडाल निंदक है ॥२॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥ ३ ॥

दोहा—कांस होत शुचि भस्मसे, ताम्र खटाई धोइ।
रजोधर्मते नारि शुचि, नदी बेगसे होइ ॥३॥

कांसेका पात्र राखसे, तांबेका अम्ल (खटाई) से, स्त्री रजस्वला होने पर और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥३॥

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन्सम्पूज्यते द्विजः ।
भ्रमन्सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥ ४ ॥

दोहा—पूजि जात है भ्रमनसे, द्विज योगी औ भूप।
भ्रमन किये नारी नशै, ऐसी नीति अनूप ॥४॥

भ्रमण करनेवाला राजा, ब्राह्मण, योगी पूजित होते हैं परंतु स्त्री घूमनेसे नष्ट हो जाती है ॥४॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थः स च पंडितः ॥ ५ ॥

दोहा—मित्र औ हैं बंधु तेहि, सोइ पुरुष गणजात।
धन है जाके पासमें, पण्डित सोइ कहात ॥५॥

जिसके धन है उसीके मित्र और उसीके बांधव होते हैं और वही पुरुष गिनाजाता है वही पंडित कहलाता है ॥५॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा–तैसीही मति होत है, तैसोई व्यवसाय ।
होनहार जैसो रहै, तैसो इ मिलत सहाय ।।६।।

वैसीही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और से ही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ।।६।।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ७ ॥

दोहा–काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ।
सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार ।।७।।

काल सब प्राणियोंको पचाता है और कालही सब प्रजाका नाश करता है, सब पदार्थके लय होजानेपर काल जागता रहता है, कालको कोई नहीं टाल सकता ।७।

न पश्यंति च जन्मान्धाः कामान्धो नैव पश्यति ।
मदोन्मत्ता न पश्यंति अर्थी दोषं न पश्यति ॥ ८ ॥

दोहा–जन्म अंध देखै नहीं, काम अंध तस जान ।
तैसेही मद अंध है, अर्थी दोष न मान ।।८।।

जन्मके अंधे नहीं देखते, कामसे जो अंधा हो रहा है उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसीको देखते नहीं और अर्थी दोषको नहीं देखता ।।८।।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

दोहा–जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहू आप ।
आप भ्रमत संसारमें, मुक्ति लहत है आप ।।९।।

जीव आपही कर्म करता है और उसका फलभी आपही भोगता है आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्त भी होता है ।।९।।

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१०॥

दोहा–प्रजापाप नृप भोगियत, प्रोहित नृपको पाप।
तियपातक पति शिष्यको गुरु भोगत है आप ॥१०॥

अपने राज्यमें किये हुए पापको राजा और राजाके पापको पुरोहित भोगता है, स्त्रीकृतपापको स्वामी भोगता है, वैसेही शिष्यके पापको गुरु ॥१०॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥११॥

दोहा–ऋणकर्ता पितु शत्रु पर, पुरुष गामिनी मात।
रूपवती तिय शत्रु है, शत्रु अपंडित जात ॥११॥

ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता और सुंदरी स्त्री शत्रु है और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥११॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥१२॥

दोहा–धनसे लोभी वश करै, गर्विहि जोरि स्वपान।
मूरखके अनुसरि चले, बुधजन सत्य कहान ॥१२॥

लोभीको धनसे, अहंकारीको हाथ जोड़नेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पंडितको सच्चाईसे वश करना चाहिये ॥१२॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्।
वरं न शिष्यो न कुशिष्य शिष्यो
वरं न दारा न कुदारदाराः ॥१३॥

दोहा–नहिं कुराज बिनु राज भल, त्यों कुमीत हूं मीत।
शिष्य बिना वरु है भलो, त्यों कुवार कहु मीत ॥१३॥

राज्य न रहना यह अच्छा, परंतु कुराजाका राज्य होना यह अच्छा नहीं, मित्रका नह होना यह अच्छा, परंतु कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं, शिष्य न हो

यह अच्छा परंतु निंदित शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं, भार्या न रहे यह अच्छा, पर कुभार्याका भार्या होना अच्छा नहीं ।।१३।।

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेण कुतोभिनिर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥१४॥

दोहा—कहं कुराजत प्रजहि सुख, लहि कुमीत सुख केह ।
कहं कुशिष्यते यश मिले, नहिं कुनारि रति गेह ।।१४।।

दुष्ट राजाके राज्यसे प्रजाको सुख और कुमित्र मित्रसे आनंद कैसे हो सकता है ? दुष्ट स्त्रीसे गृहमें प्रीति और कुशिष्यके पढ़ानेवालेकी कीर्ति कैसे होगी ।।१४।।

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ।
वायसात्पंचशिक्षेच्च षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात् ॥१५॥

दोहा—एक एक बक सिंहसे, चारि कुकुट गुण लीन ।
पांच काकते श्वानते, षट गर्दभसे तीन ।।१५।।

सिंह और बकसे एक एक, व कुक्कुट (मुर्गा) से चार कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण सीखने उचित हैं ।।१५।।

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति ।
सर्वारंभेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥१६॥

दोहा—जो कारज करणीय है, बहुत होय वा नेक ।
सब यतनसे कीजिये, यही सिंहगुण एक ।।१६।।

कार्य छोटा हो वा बड़ा जो करणीय हो, उसको सब प्रकारके प्रयत्नसे करना उचित है, इस एक गुणको सिंहसे सीखना कहते हैं ।।१६।।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत्पण्डितो नरः ।
देशकालं बलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१७॥

दोहा—करि संयम इंद्रियनको, पंडित बगुल समान ।
देश काल बल जानिकै, कारज करै सुजान ॥१७॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि, इंद्रियोंका संयम करके देशकाल बलको समझकर बगुलाके समान सब कार्यको साधै ॥१७॥

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भोगं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ॥१८॥

दोहा—युद्ध भोग आक्रमण करि, उचित समय पर जाग ।
यही चारि गुण कुक्कुटके, देन बंधुजन भाग ॥१८॥

उचित समय में जागना, रणमें उद्यत रहना और बंधुओंको उनका भाग देना और आप आक्रमण करके भोग करना इन चार बातोंको कुक्कुट (मुर्गा) से सीखना चाहिये ॥१८॥

गूढं च मैथुनं धाष्टर्यं काले चालयसंग्रहम् ।
अप्रमादमविश्वासं पंच शिक्षेच्च वायसात् ॥१९॥

दोहा—मैथुन गुप्त रु धृष्टता, अवसर संग्रह गेह ।
अप्रमाद विश्वास तजि, पञ्च काकबुधि लेह ॥१९॥

छिपकर मैथुन करना, धैर्य धरना, समयमें घरसंग्रह करना, सावधान रहना और किसीपर विश्वास न करना इन पांचोंको कौवेसे सीखना उचित है ॥१९॥

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥२०॥

दोहा—बहु अहार थोरेहि तृपित, सुख सोवत झट जाग ।
छः गुण श्वानके शूरता, अरु स्वामी अनुराग ॥२०॥

बहुत खानेकी शक्ति रहते भी थोड़ेहोसे संतुष्ट होना, गाढ़ निद्रा रहते भी झटपट जागना, स्वामीकी भक्ति और शूरता इन छः गुणोंको कुत्तेसे सीखना चाहिये ।।२०।।

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णे न च पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ।।२१।।

दोहा—थक्यो भार ढोयो करै, शीत घाम समझै न ।
गर्दभके गुण तीनिये, फिरे सदाही चैन ।।२१।।

अत्यन्त थकजाने पर भी बोझको ढोते जाना, शीत और उष्णपर दृष्टि न देना, सदा संतुष्ट होकर विचरना इन तीन बातोंको गदहेसे सीखना चाहिये ।।२१।।

एतान्विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति ।।२२।।

दोहा—जे नर धारण करत हैं, यह उत्तम गुण बीस ।
होय विजय सब काममें, तिनकी बीसौ बीस ।।२२।।

जो नर इन बीस गुणोंको धारण करेगा वह सदा सब कार्योंमें विजयी होगा ।।२२।।

इति षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः ७

अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणीचरितानि च ।
नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।१।।

दोहा—अर्थनाश गृहिणी चरित, औ मनको संताप ।
नीचवचन अपमानको, बुधजन कहत न आप ।।१।।

धनका नाश, मनका ताप, गृहिणीका चरित, नीचका वचन और अपमान बुद्धिमान् प्रकाश न करे ।।१।।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२॥

दोहा–विद्यासंग्रह करनमें, अन धनके व्यापार ।
छोड़े लज्जा सुख लहे, सभी आहार व्योहार ॥२॥

अन्न और धनके व्यापारमें, विद्याके संग्रह करनेमें और व्यवहारमें जो पुरुष लज्जाको दूर रक्खेगा वही सुखी होगा ॥२॥

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च ।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥३॥

दोहा–जो सुख संतोषी लहत, तोष अमिय करि पान ।
सो सुख लोभिनको नहीं, धाइ तजत जे प्रान ॥३॥

संतोषरूप अमृतसे जो लोग तृप्त होते हैं उनको जो शांतिसुख होता है यह धनके लोभसे जो इधर उधर दौड़ा करते हैं उनकी नहीं होता ॥३॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥४॥

दोहा–निजतिय भोजन विभवमें, सदा राखिये तोष ।
पढ़िबो जप और दानमें, है संतोषै दोष ॥४॥

अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें संतोष करना चाहिये । पढ़ना, जप और दान इन तीनोंमें संतोष कभी नहीं करना चाहिये ॥४॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च ॥५॥

दोहा–द्वै द्विज औ द्विज अग्निहूं, स्वामि भृत्य पति नारि ।
तैसेही हल बैलको, बीच जाइये वारि ॥५॥

दो ब्राह्मण और ब्राह्मण अग्नि, स्त्री पुरुष, स्वामी भृत्य, हल और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥५॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेवच ।
नैव गां च कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥६॥

दोहा—विप्र कुमारी अग्नि अरु, वृद्ध बाल अरु गाय ।
इन्हें कदापि न कीजिये, स्परश पांव छू आय ॥६॥

अग्नि, गुरु और ब्राह्मण इनको और गौको, कुमारीको वृद्धको और बालकको पैरसे न छूना चाहिये ॥६॥

शकटं पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम् ।
हस्तिनं तु सहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनम् ॥७॥

दोहा—पांच हाथ गाडीनसे, दश घोड़नसे दूर ।
और हजार हाथीनसे, तजहि देश जहं क्रूर ॥७॥

गाड़ीको पांच हाथपर, घोड़ेको दश हाथ पर, हाथीको हजार हाथ पर, दुर्जनको देशत्याग करके छोड़ना चाहिये ॥७॥

हस्ती ह्यङ्कुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लकुटहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥८॥

दोहा—गज अंकुश औ हाथसे, अश्व ताडना देय ।
शृंगिन कहँ लकुटी लिये, दुष्ट खड्ग कर लेय ॥८॥

हाथी केवल अंकुशसे, घोड़ा हाथसे, सींगवाले जीव लाठीसे और दुर्जन तरवार संयुक्त हाथसे दंड पाता है ॥८॥

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ।
साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥९॥

दोहा—मोर मेघगर्जन समय, विप्र सुभोजन खाय ।
साधु तुष्ट परसुख भये, खल पर दुख हरषाय ॥९॥

भोजनके समय ब्राह्मण और मेघके गर्जने पर मयूर, दूसरेको संपत्ति प्राप्त होनेपर साधु और दूसरेको विपत्ति आने पर दुर्जन संतुष्ट होते हैं ॥९॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्बलम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥१०॥

दोहा—बलिहि तासु अनुकूल चलि, अवलिहि चलि प्रतिकूल ।
सब बलते वा विनयतें, करि अरि निज समतूल ॥१०॥

बली वैरीको उसके अनुकूल व्यवहार करनेसे, यदि वह दुर्बल हो तो उसे प्रतिकूलतासे वश करे, बलमें अपने समान शत्रुको विनयसे अथवा बलसे जीते ॥१०॥

बाहुवीर्यबलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥११॥

दोहा—ब्राह्मणका बल वेद है, अहै बाहुबल भूप ।
तरुणाई औ मधुरता, पुनि अबलन बल रूप ॥११॥

राजाको बाहुवीर्य बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी वा वेदपाठी बली होता है और स्त्रियोंको सुंदरता तरुणता और मधुरता अतिउत्तम बल है ॥११॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्तिपादपाः ॥१२॥

दोहा—नहिं अति सरल सुभावते, रहन उचित जग माहिं ।
काटैं सीधे वृक्षको, टेढ़न पूछैं नाहिं ॥१२॥

अतिसीधे स्वभावसे नहीं रहना चाहिये. इस कारण कि, वनमें जाकर देखो, सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़े खड़े रहते हैं ॥१२॥

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसा-
स्तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं
पुनस्त्यजन्तः पुनराश्रयन्तः ॥१३॥

दोहा—बसैं हंस जहँ जल रहै, सूखे तेहि तज जाहिं ।
ग्रहण त्याग पुनि पुनि नरहिं, हंस सरिस भल नाहिं ॥१३॥

जहां जल रहता है वहां ही हंस बसते हैं, वैसेही सूखे सरको छोड़ देते हैं. नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि, वे बार बार छोड़ देते हैं और बार बार आश्रय लेते हैं ॥१३॥

उपार्जितानां वित्तानां त्यागेनैव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परिस्रव इवाम्भसाम् ॥१४॥

दोहा—अर्जित धनको त्यागहि, रक्षा गावत नीति ।
जस तडागके बीचके, जल निकसनकी रीति ॥१४॥

अर्जित धनोंको व्यय करनाही रक्षा है, जैसे तडागसे भीतरके जल का निकलना ॥१४॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थः स पुमाँल्लोके यस्यार्थः स च जीवति ॥१५॥

दोहा—जाहि अर्थ तेहि मित्र अरु, बंधु आदि सबतात ।
सो जीवत है जगतमें, सोइ पुरुष गनि जात ॥१५॥

जिसके धन रहता है उसीके मित्र होते हैं जिसके पास अर्थ रहता है उसीके बंधु होते हैं, जिसके धन रहता है वह पुरुष गिना जाता है और जिसके अर्थ है वही जीता है ॥१५॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे । दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥१६॥

दोहा—स्वर्गीय चिह्न मनुष्यके, यही चार पहँचान ।
मधुर वचन देवार्चना, दान विप्रको मान ॥१६॥

संसारमें आनेपर स्वर्गवासियोंके शरीरमें चार चिह्न रहते हैं दानका स्वभाव,

मीठा वचन, देवताकी पूजा, ब्राह्मणको तृप्त करना अर्थात् जिन लोगोंमें दान आदि लक्षण रहें उनको जानना चाहिये कि, ये स्वर्गवासी हैं उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे मृत्युलोकमें अवतार लिये हैं ॥१६॥

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसङ्गः कुलहीनसेवा
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१७॥

दोहा–अतिहि कोप कटुवचनहू, दारिद नीच मिलान ।
स्वजन वैर अकुलिन टहल, यह षट नरक निशान ॥१७॥

अत्यंत क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनोंमें वैर, नीचका संग, कुलहीनकी सेवा ये चिह्न नरकवासियोंके देहमें रहते हैं ॥१७॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च लभ्यते
वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥१८॥

दोहा–सिंहभवन यदि जाय कोउ, गज मुक्ता तहँ पाव ।
वत्सपूंछ खरचर्म टुक, स्यार मांद जो जाव ॥१८॥

यदि कोई सिंहकी गुहामें जापड़े तो उसको हाथीके कपोलके मोती मिलते हैं और सियारके मांदमें जानेपर बछड़ेकी पूंछ और गदहेके चमड़ेका टुकड़ा मिलता है ॥१८॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ॥१९॥

दोहा—श्वान पूंछसम जीवनो, विद्या विनु है व्यर्थ ।
दंशनिवारण तन ढकना, नहिं एको सामर्थ ।।१९।।

कुत्तेके पूंछके समान विद्याविना जीना व्यर्थ है. कुत्तेकी पूंछ गोप्येन्द्रिको ढांप नहीं सकती है, न मच्छर आदि जीवोंको उड़ा सकती है ।।१९।।

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ।।२०।।

दोहा—वचन शुद्ध मन शुद्ध औ, इंद्रिय संयम शुद्ध ।
भूतदया औ स्वच्छता, पर अर्थिन यह शुद्ध ।।२०।।

वचनकी शुद्धि, मनकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, सब जीवोंपर दया और पवित्रता ये परार्थियोंकी शुद्धि है ।।२०।।

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ।।२१।।

दोहा—बास सुमनमहं तेल तिल, अग्नि काठ पय घीव ।
ऊखहि गुड़ तिमि देहमें, आतम लखु मथि सीव ।।२१।।

फूलमें गंध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी ऊखमें गुड़ जैसे वैसेही देहमें आत्माको विचारसे देखो ।।२१।।

इति सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः ८

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ।।१।।

दोहा—अधम धनहिको चहत हैं, मध्यम धन और मान ।
मानै धन है बड़नको, उत्तम चाहैं मान ।।१।।

अधम धनही चाहते हैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहते हैं, इस कारण कि महात्माओंका धन मानही है ॥१॥

इक्षूनपः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः २

सोरठा–ऊख वारि पय मूल, औषधहूको खायके ।
तथा खाय तांबूल, स्नान दान आदिक उचित ॥२॥

ऊख, जल, दूध, फल, मूल और औषध इन वस्तुओंके भोजन करने पर भी स्नान दान आदि क्रिया करनी चाहिये ॥२॥

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥३॥

दोहा–दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजाय ।
अन्न जैसेही खाय जो, तैसई संतति पाय ॥३॥

दीप अंधकारको खाय जाता है और काजलको जन्माता है जो जैसा अन्न सदा खाता है उसीकी वैसीही सन्तति होती है ॥३॥

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहे क्वचित्
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ।
जीवान्स्थावरजङ्गमांश्च सकलान्सञ्जीव्य भूमण्डलं
भूयः पश्यति देवकोटिगुणितं गच्छेत्तमम्भोनिधिम् ।

दोहा–गुणिहि न औरभि देइ धन, लखिय जलद जलपाय ।
मधुर कोटिगुण, करि जगत, जीवन जलनिधि जाय ॥४॥

हे मतिमन्! गुणियोंको धनदो, औरोंको कभी मत दो, समुद्रसे मेघ के मुखमें प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता है, पृथ्वीपर चर अचर सब जीवोंको जिलाकर फिर देखो, वही जल कोटि गुणा होकर उसी समुद्रमें चला जाता है ॥४॥

चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥५॥

दोहा—एक सहस चंडाल सम, यवन नीच इक होय ।
तत्त्वदर्शि कहा यवनते, नीच और नहीं कोय ।५॥

तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि, सहस्र चांडालोंके तुल्य एक यवन होता है और यवनसे नीच दूसरा कोई नहीं है ॥५॥

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत् ॥६॥

दोहा—चिताधूम तनुतेल लगि, मैथून क्षौर बनाय ।
तबलौं है चंडालसम, जबलौं नाहिं नहाय ॥६॥

तेल लगानेपर, चिताके धूम लगनेपर, स्त्रीप्रसंग करनेपर, बाल बनवाने पर तबतक चांडालही बना रहता है जबतक स्नान नहीं करता है ॥६॥

अजीर्णे भेषजं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥७॥

दोहा—वारि अजीरण औषध, जीरणमें बलदानि ।
भोजनके संग अमृत है, भोजनान्त विष मानि ॥७॥

अपच होनेपर जल औषध है, पचजानेपर जल बलको देता है, भोजन समय पानी अमृतके समान है और भोजनके अंतमें विषका फल देता है ॥७॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः ।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥८॥

दोहा—ज्ञान क्रिया विन नष्ट है, नरनसु जो अज्ञान ।
निरनायक नसु सैनहू, त्यों पतिविन तिय जान ॥८॥

क्रियाके विना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञानसे नर मरासा है सेनापतिके विना सेना मारी जाती है और स्वामीहीन स्त्री नष्ट हो जाती है ॥८॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम् ।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥९॥

दोहा—वृद्धसमय जो मरे तिय, बंधुहाथ धन जाय ।
पराधीन भोजन मिलै, यह तीनों दुखदाय ॥९॥

बुढ़ापेमें मरी स्त्री, बंधुके हाथमें गया, धन और दूसरेके अधीन भोजन ये तीन पुरुषोंकी विडम्बना है अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥९॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया ।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१०॥

दोहा—अग्निहोत्र विनु वेद नहिं, नहीं क्रिया विनु दान ।
भाव विना नहिं सिद्धि है, सबमें भाव प्रधान ॥१०॥

अग्निहोत्रके विना वेदका पढ़ना व्यर्थ होता है, दानके विना यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, भावके विना कोई सिद्धि नहीं होती, इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥१०॥

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम् ।
श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोःप्रसादतः ॥११॥

दोहा—धातु काठ पाषाणको, करु सेवन युतभाव ।
श्रद्धासे भगवत्कृपा, तैसो तेहि सिद्धि आव ॥११॥

धातु, काष्ठ, पाषाणको भावसहित सेवन करना श्रद्धासे और भगवत्कृपासे जैसा भाव है तैसीही सिद्धि होती है ॥११॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ।
भावो हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१२॥

सोरठा—देव न काठ पषाण, नहीं माटिहूमें रहै ।
जाने सुघर सुजान, विद्यमान है भावमें ॥१२॥

देवता काठमें नहीं है, न पाषाणमें है, न मृत्तिकाकी मूर्त्तिमें है निश्चय है कि देवता भावमें विद्यमान है इस हेतु भावही सबका कारण है ।।१२।।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।
न तृष्णायाः परः व्याधिर्न च धर्मो दयासमः ।।१३।।

दोहा–शांतीसम तप और नहिं, सुख संतोष समान ।
नहिं तृष्णासम व्याधि है, धर्म दयासम आन ।।१३।।

शांतिके समान दूसरा तप नहीं है, न संतोषसे परे सुख, न तृष्णासे दूसरी व्याधि है, न दयासे अधिक धर्म है ।।१३।।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुघा धेनुः सन्तापो नन्दनं वनम् ।।१४।।

दोहा–तृष्णा वैतरणी नदी, यमस्वरूप है रोष ।
कामधेनु विद्या अहै, नंदनवन संतोष ।।१४।।

क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और संतोष इन्द्रकी वाटिका है ।।१४।।

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ।।१५।।

दोहा–रूपहि गुण भूषित करै, कुल करि शील प्रकाश ।
विद्य भूषित सिद्धि करि, धनलहि भोग विलाश ।।१५।।

गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है और भोग धनको भूषित करता है ।।१५।।

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम् ।
असिद्धस्य हता विद्या ह्यभोगेन हतं धनम् ।।१६।।

दोहा–निर्गुणका हत रूप है हत कुशील कुलमान ।
हत विद्याहु असिद्धकी, हत अभोग धन धान ।।१६।।

निर्गुणकी सुंदरता व्यर्थ है, शीलहीनका कुल निंदित होता है, सिद्धि विना विद्या व्यर्थ है, भोगके विना धन व्यर्थ है ।।१६।।

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तुष्टो ब्राह्मणः शुचिः ॥१७॥

दोहा—शुद्ध भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रता जौन ।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोषि शुचि तौन ।।१७।।

भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिना जाता है, ब्राह्मण संतोषी शुद्ध होता है ।।१७।।

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जश्च कुलाङ्गनाः ॥१८॥

दोहा—असंतुष्ट द्विज नर है, नष्ट तुष्ट नरराज ।
नष्ट सलज्जा पातुरी, कुलनारी विन लाज ।।१८।।

असंतोषी ब्राह्मण निंदित गिने जाते हैं और संतोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निन्दित गिनी जाती है ।।१८।।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥१९॥

दोहा—विद्याहीन विशालहू, कुल मनुष्य कहि काज ।
दुष्टकुलहु विद्वानको, पूजित देव समाज ।।१९।।

विद्याहीन बड़े कुलसे मनुष्योंको क्या लाभ है विद्वान्का नीच भी कुल देवताओंसे पूजा पाता है ।।१९।।

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥२०॥

दोहा—विदुष प्रशंसित होत जग, सव थल गौरव पाय ।
विद्यासे सव मिलत हैं, सब थल सोइ पुजाय ।।२०।।

संसारमें विद्वान्‌ही प्रशंसित होता है, विद्वान सब स्थानमें आदर पाता है, विद्याहीसे सब मिलता है, विद्याही सब स्थानमें पूजित होती है ।।२०।।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।।२१।।

दोहा—छवि यौवन संपन्नहू, जनित कुलहु अनुकूल ।
सोहु न विद्या विनु रहित, गंध टेसु जिमि फूल ।।२१।।

सुंदर तरुणतायुक्त और बड़े कुलमें उत्पन्न भी विद्याहीन पुरुष ऐसे नहीं शोभते जैसे विना गंध पलाशके फूल ।।२१।।

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी ।।२२।।

दोहा—मांसभक्ष मदिरा पियत, मूरख अक्षरहीन ।
नराकार पशुभार यह पृथिवी नहिं सहु तीन ।।२२।।

मांसके भक्षण और मदिरापान करनेवाले, निरक्षर और मूर्ख इन पुरुषाकार पशुओंके भारसे पृथ्वी पीडित रहती है ।।२२।।

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानं हीनदानो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ।।२३।।

दोहा—अन्नहीन राज्यहि दहत, दानहीन यजमान ।
मंत्रहीन ऋत्विजन कहं, ऋतुसम रिपु नहिं आन ।।२३।।

यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्यको, मंत्रहीन हो तो ऋत्विजोंको, नीचको दान हो तो यजमानको जलाता है, इस कारण यज्ञके समान कोई भी शत्रु नहीं है।।२३।।

इति वृद्धचाणक्येऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

नवमोऽध्यायः ९

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥१॥

सोरठा—मुक्ति चहो जो तात, विषयनको तजु विषसरिस ।
दया शील सच बात, शौच सरलता गहु क्षमा ॥१॥

हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयोंको विपके समान छोड़ दो सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाईको अमृतकी नाई पीओ ॥१॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः ।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥२॥

दोहा—जौन अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।
ते विलाय जैहैं यथा, मधि बिमवटको सांप ॥२॥

जो नराधम परस्पर अंतरात्माके दुःखदायक वचनको भाषण करते हैं वे निश्चयकरके नष्ट हो जाते हैं, जैसे बिमौटमें पड़कर सांप ॥२॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान्धनी भूपतिर्दीर्घजीवी
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥३॥

दोहा—गंध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह ।
सुमन मलय धाता न किय, लहु ज्ञाता गुरु नाह ॥३॥

सुवर्णमें गंध, ऊखमें फल, चंदनमें फूल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया इससे निश्चय है कि, विधाताको पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥३॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना
सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।

सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥४॥

दोहा–गुरुच औषधिन सुखनमें, भोजन कह्यो प्रधान ।
चख इंद्रिय सब अंगमें, सिर प्रधान तिमि जान ॥४॥

सब औषधियोंमें गुरुच (गिलोय) प्रधान है, सब सुखोंमें भोजन श्रेष्ठ है, सब इन्द्रियोंमें आंख उत्तम है, सब अंगोंमें शिर श्रेष्ठ है ॥४॥

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता
पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥५॥

दोहा–दूत वचन गति संग नहिं, नभ न आदि कहु कोय ।
शशिरविग्रहण बखान जो, द्विज न विदुष किमि होय ॥५॥

आकाशमें दूत नहीं जासकता, न वार्ताकी चर्चा चल सकती न पहिलेहीसे किसीने कहि रक्खा है और न किसीसे सङ्गम हो सकता ऐसी दशामें आकाशमें स्थित सूर्यचंद्रके ग्रहणको द्विजवर स्पष्ट जानता है वह कैसे विद्वान् नहीं है ? ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधार्तो भयकातरः ।
भाण्डारी प्रतिहारश्च सप्त सुप्तान्प्रबोधयेत् ॥६॥

दोहा–द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधारत पाय ।
भांडारी विद्यारथी, सोवत सात जगाय ॥६॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूंखसे पीडित, भयसे कातर, भांडारी और द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगा देना चाहिये ॥६॥

अहिं नृपं च शार्दूलं विटं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥७॥

दोहा—भूपति मृगपति मूढ़पति, त्यों शूकर औ बाल ।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥७॥

सांप, राजा, व्याघ्र, सूअर, वैसेही बालक, दूसरेका कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥७॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥८॥

दोहा—अर्थहेतु वेदहि पढें, खाय शूद्रको धान ।
ते द्विज क्या कर सकत हैं, विन विष व्यालसमान ॥८॥

जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढ़ा, वैसे ही जो शूद्रका अन्न भोजन करते हैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या कर सकते हैं ॥८॥

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥९॥

दोहा—रुष्ट भये भय तुष्टसे, नहीं धनागम होय ।
दंड सहाय न करिसकै का रिसाय करु सोय ॥९॥

जिसके क्रुद्ध होनेपर न भय है, प्रसन्न होनेपर न धनका लाभ, न दंड या अनुग्रह हो सकता है, वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥९॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा ।
विषमस्तु न चाप्यस्तु फटाटोपो भयङ्करः ॥१०॥

दोहा—विन विषहूके सांपको, चाहिन फनै बढ़ाय ।
होउ नहीं वा होउ विष, फटाटोप भयदाय ॥१०॥

विषहीन सांपको भी अपनी फणा बढ़ानी चाहिये इस कारण कि विष हो वा, न हो आडम्बर भयजनक होता है ॥१०॥

प्रातर्द्यूतप्रसङ्गेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः ।
रात्रौ चौरप्रसङ्गेन कालो गच्छति धीमताम् ॥११॥

दोहा–प्रातःद्यूत प्रसंगसे, मध्य स्त्रीपरसंग ।
सायं चोरप्रसंग कह, काल गेह तव अंग ।।११।।

प्रातःकालमें जुआरियोंकी कथासे अर्थात् महाभारतसे, मध्याह्नमें स्त्रीके प्रसंगसे अर्थात् रामायणसे, रात्रिमें चोरकी वार्तासे अर्थात् भागवतसे बुद्धिमानोंका समय वीतता है । तात्पर्य यह कि, महाभारतके सुननेसे यह निश्चय हो जाता है कि जुआ और कलह छलका घर है, इस लोक और परलोकमें उपकार करनेवाले कर्मोंको महाभारतमें लिखी हुई रीतियोंसे करनेपर उन कामोंका पूरा फल होता है, इस कारण बुद्धिमान् लोग प्रातःकालही महाभारतको सुनते हैं. जिससे दिनभर उसी रीतिसे काम करते जाय । रामायण सुननेसे स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि, स्त्रीके वश होनेसे अत्यंत दुःख होता है और परस्त्रीपर दृष्टि देनेसे पुत्र कलत्र जड़ मूलके साथ पुरुषका नाश हो जाता है, इस हेतु मध्याह्नमें अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं, प्रायः रात्रिमें लोग इन्द्रियोंके वश हो जाते हैं और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि, मनको अपने २ विषयोंमें लगाकर जीवको विषयोंमें लगा देती हैं, इसी हेतुसे इन्द्रियोंको आत्माहारी भी कहते हैं और जो लोग रातको भागवत सुनते हैं, वे कृष्णके चरित्रको स्मरण करके इन्द्रियोंके वश नहीं होते. क्योंकि, सोलह हजारसे अधिक स्त्रियोंके रहते भी कृष्णचन्द्र इंद्रियोंके वश न हुए और इन्द्रियोंके समयकी रीति भी जान जाते हैं ।।११।।

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१२॥

दोहा–सुमन माल निज कर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ ।
धन इंद्रहु नाशै दिये, स्वघसित चन्दन काठ ।।१२।।

अपने हाथसे गुथी माला, अपने हाथसे घिसा चंदन, अपने हाथसे लिखा स्तोत्र ये इंद्रकी भी लक्ष्मीको हर लेते हैं ।।१२।।

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम च मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम् ॥१३॥

दोहा—ऊख शूद्र दधि नायिका, हेम मेदिनी पान।
तिल चंदन इन नवनको, मर्दन ही गुण जान ॥१३॥

ऊख, तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन दही और पान इनका मर्दन, गुणवर्द्धन है ॥१३॥

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

दोहा—दारिद सोहत धीरते, कुपट शुभ्रता पाय।
लहि कुअन्न उष्णत्वको, शील कुरूप सुहाय ॥१४॥

दरिद्रता भी धीरतासे शोभती है, स्वच्छतासे कुवस्त्र सुंदर जान पड़ता है कुअन्न भी उष्णतासे मीठा लगता है, कुरूपता भी सुशील हो तो शोभती है ॥१४॥

इति वृद्धचाणक्ये नवमोऽध्यायः।

इति पूर्वार्द्धम्

वृद्धचाणक्योत्तरार्द्धम्

दशमोऽध्यायः १०

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु ॥१॥

दोहा—हीन नहीं धनहीन है, निश्चय सो मनमान ।
विद्यारत्न विहीन जो, सकल हीन तेहि जान ॥१॥

धनहीन हीन नहीं गिना जाता, किंतु निश्चयही वह धनी है, विद्या रत्नसे जो हीन है वह सब वस्तुओंमें हीन है ॥१॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥२॥

दोहा—दृष्टि शोधि पग धरिय पग, पीजिय जल पट शोधि ।
शास्त्रशोधि बोलिय वचन, करिय काज मन शोधि ॥२॥

दृष्टिसे शोधकर पांव रखना उचित है, वस्त्रसे शुद्धकर जल पीवे, शास्त्रसे शुद्धकर वाक्य बोले और मनसे सोचकर कार्य करना चाहिये ॥२॥

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थिनःकुतो विद्या सुखं विद्यार्थिनःकुतः ॥३॥

दोहा—सुख चाहे विद्या तजै, सुख तजि विद्या चाह ।
सुख अर्थिहि विद्या कहां, विद्यार्थिहि सुखकाह ॥३॥

यदि सुख चाहे तो विद्याको छोड़ दे, यदि विद्या चाहे तो सुखका त्याग करे, सुखार्थीको विद्या, विद्यार्थीको सुख कैसे होगा ॥३॥

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषिताः ।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किंन खादन्ति वायसाः ॥४॥

दोहा—काह न जानै सुकवि जन, करै कहा नहिं नारि।
मद्यपि कहा न बकि सकै, काग खाहि केहि वारि ।।४।।

कवि क्या नहीं देखते, स्त्री क्या नहीं कर सकती, मद्यपि क्या नहीं बकते और कौवे क्या नहीं खाते ।।४।।

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेव च।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः ।।५।।

स०—बनवे अति रंकन भूमिपती, अरु भूमिपतीनहुं रंक अती।
धनिको धनहीन फिरैं करती, अधनी न धनी विधि केरि गती ।५।

निश्चय है कि, विधि रंकको राजा, राजाको रंक, धनीको निर्धन, निर्धनको धनी कर देता है ।।५।।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधको रिपुः।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ।।६।।

दोहा—याचक रिपुलोभीनके, मूढन जो शिख दानि।
जार तियन अरि पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जानि ।।६।।

लोभियोंको याचक और मूर्खोंको समझानेवाला और पुंश्चली स्त्रियोंको पति और चोरोंको चन्द्रमा शत्रु है ।।६।।

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।७।।

दोहा—धर्म शील गुण नाहिं जेहि, नहिं विद्या तप दान।
मनुजरूप भुवि भार तेहि, विचरत मगकरि जात ।।७।।

जिन लोगोंमें न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म है वे संसारमें पृथ्वीपर भाररूप होकर मनुष्य रूपसे मृगसे फिर रहे हैं ।।७।।

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥८॥

सोरठा—शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय ।
बसै मलयगिरिदेश, तऊ बांसमें बास नहिं ॥८॥

गंभीरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता, मलयाचलके संगसे बांस चन्दन नहीं होता ॥८॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

दोहा—स्वाभाविक नहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह ।
जो नर नयनविहीन है, दर्पणसे का ताह ॥९॥

जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सकता है जैसे आंखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ? ॥९॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो नहि भूतले ।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१०॥

दोहा—दुर्जन सज्जन करनको, भूतल नहीं उपाय ।
है अपान शुचि इन्द्रि नहिं, सौ सौ धोई जाय ॥१०॥

दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं है, मलके त्याग करनेवाली इंद्रिय सौ वार भी धोई जाय तो भी श्रेष्ठ इंद्रिय न होगी ॥१०॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥११॥

दोहा—सतविरोधते मत्यु मिलु, धनक्षय करि अरि द्वेष ।
राजद्वेषसे नशत है, कुलक्षय करु द्विज द्वेष ॥११॥

बड़ोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोध करनेसे धनका क्षय होता है, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होता है ॥११॥

वरं वने व्याघ्रगजेन्द्रसेविते
द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२॥

छंद– गज बाघ सेवित वृक्ष घर बन माहि वरु रहिवो करै ।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृणसेज वरु लहिवो करै ॥
शत छिद्र वल्कल वस्त्रकरि वहु काल यह गहिवो करै ।
निजबंधुमह धनहीन है नहिं जीवनो चहिवो करै ॥१२॥

वनमें बाघ और बड़े २ हाथियोंसे सेवित वृक्षके नीचेके पत्ता फल खाना वा जलका पीना, घासपर सोना, सौ टुकड़ेके वल्कलोंको पहिनना ये श्रेष्ठ हैं, पर बन्धुओंके मध्यमें धनहीनका जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥१२॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाःशाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

छंद–विप्र वृक्ष है मूल संध्या वेद शाखा जानिये ।
धर्म कर्म हैं पत्र दोऊ मूलको नहिं नाशिय ॥
जो नष्टमूल ह्वै जाय तो कुछ शाख पात न फूटिये ।
यही नीति सुनीति है की मूलरक्षा कीजिये ॥१३॥

ब्राह्मण वृक्ष है, उसको जड़ संध्या है, वेद शाखा हैं और धर्म पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न करके जड़को रक्षा करनो चाहिये. जड़ कट जानेपर न शाखा रहेगी और न पत्ते ॥१३॥

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१४॥

दोहा—लक्ष्मी देवी मातु है, पिता विष्णु सर्वेश ।
कृष्ण भक्त बंधू सभी, तीन भुवन निजदेश ॥१४॥

जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान् पिता हैं और विष्णुभक्त बांधव हैं उसको तीनों लोक स्वदेशही है ॥१४॥

एक वृक्षसमारूढा नानावर्णा विहङ्गमाः ।
प्रभाते दिक्षु दशसु याति का परिदेवना ॥१५॥

दोहा—बहुविधि पक्षी एक तरु, जो बैठे निशि आय ।
भोर दशों दिशि उड़ि चले, वह कोही पछिताय ॥१५॥

नाना प्रकारके पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, प्रभात समय दशों दिशामें हो जाते हैं उसमें क्या शोच है ॥१५॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
वने सिंहो मदोन्मत्तो जम्बुकेन निपातितः ॥१६॥

दोहा—बुद्धि जासु है सो वली, निर्बुधिके वल नाहिं ।
अतिबल सिंहहि स्यार लघु, चतुर हतेसि बनमाहिं ॥१६॥

जिसको बुद्धि है उसको बल है निर्बुद्धिको बल कहां से होगा, देखो मदसे उन्मत्त सिंह सियारसे मारा गया ॥१६॥

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वंभरो गीयते
नोचेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत् ॥
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं
त्वत्पादांबुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥१७॥

छंद–है नाम हरीको जगपालक मन जीवन शंका क्यों करनी ।
नहीं तो बालक जीवनको तनुसे पय निसरत क्यों जननी ।
यही जानकर बार बार हे यदुपति लक्ष्मीपति तेरे ।
चरणकमलके सेवनसे दिन बीते जायँ सदा मेरे ।।१७।।

मेरे जीवनमें क्या चिंता है यदि हरि विश्वका पालनेवाला कहलाता है, ऐसा न हो तो बच्चोंके जीनेके हेतु माताके स्तनमें दूध कैसे बनाते, इसको बारंबार विचार करके हे यदुपति! हे लक्ष्मीपति! सदा केवल आपके चरणकमलके सेवासे मैं समयको बिताता हूं ।।१७।।

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धि-
स्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् ।
यथा सुराणाममृते च सेविते
स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥१८॥

सोरठा–देववैन बुद्धि वेश, तऊ और भाषा चहौं ।
यदपि सुधा सुर देश, चहैं अपसरन अधररस ।।१८।।

यद्यपि संस्कृत भाषामेंही विशेष ज्ञान है तथापि दूसरी भाषाका भी लोभी हूं जैसे अमृतके रहते भी देवताओंकी इच्छा स्वर्गकी स्त्रियोंके ओष्ठके आसवमें रहती है ।।१८।।

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥

दोहा–चून दशगुणो अन्नते, ता दश गुण पय जान ।
पयते अठगुण मांस है, तेहि दशगुण घृत मान ।।१९।।

चावलसे दशगुणा पिसान (चून) में गुण है, पिसानसे दशगुणा दूधमें, दूधसे आठगुणा मांसमें, मांससे दशगुणा घीमें ।।१९।।

शाकेन रोगा वर्धन्ते पयसा वर्धते तनुः ।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते ॥२०॥

दोहा—रोग बढ़त है शाकते, पयसे बढ़त शरीर ।
घृत खाये वीरज बढ़ै, मांस मांस गंभीर ॥२०॥

शाकसे रोग दूधसे शरीर, घीसे वीर्य और मांससे मांस बढ़ता है ॥२०॥

इति वृद्धचाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ११

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः ॥१॥

दोहा—दानशक्ति प्रिय बोलबो, धीरज उचित विचार ।
ये गुण सीखे ना मिलैं, स्वाभाविक हैं चार ॥१॥

उदारता, प्रिय बोलना, धीरता और उचितका ज्ञान ये अभ्यास से नहीं मिलते, ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥१॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयन् ।
स्वयमेव लयं याति यथा राज्यमधर्मतः ॥२॥

दोहा—वर्ग आपनो छोड़िके, गेह वर्ग जो आन ।
सो आपुइ नशि जात है, राज्य अधर्म समान ॥२॥

जो अपनी मण्डलीको छोड़ परके वर्गका आश्रय लेता है वह आप ही लयको प्राप्त हो जाता है जैसे राजाके अधर्मसे राज्य ॥२॥

हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रा नगास्तेजो
यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥३॥

स०– भारी करी रहे अंकुशके वशका वह अंकुशभारी करीसों।
त्यों तमपुंजहि नाशतदीपसो दीपकहू अंधियारसरीसों।।
वज्रके मारे गिरै गिरिहू कहुं होय भला वह वज्रगिरीसों।
तेज है जासु सोई बलवान कहा विशवासशरीरबरीसों।।३।।

हाथीका स्थूल शरीर है वह भी अंकुशके वश रहता है तो क्या हस्तीके समान अंकुश है? दीपके जलनेपर अंधकार आपही नष्ट हो जाता है, तो क्या दीपके तुल्य तम है? बिजुलीके मारे पर्वत गिर जाते हैं, तो क्या बिजुली पर्वतके समान है? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान् गिना जाता है मोटेका कौन विश्वास है।।३।।

कलौ दशसहस्राणि विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम्।
तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः॥४॥

दोहा–दश हजार बीतै बरस, कलिमें तजि हरि देहि।
तासु अर्द्ध सुरनदी जल, ग्रामदेव अधि तेहि।।४।।

कलियुगमें दशसहस्र वर्षके बीतनेपर विष्णु पृथ्वीको छोड़ देते हैं उसके आधेपर गंगाजी जलको, तिसके आधेके बीतनेपर ग्रामदेवता ग्रामको।।४।।

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता॥५॥

दोहा–विद्या गृह आसक्तको, दया मांस जे खाहिं।
लुब्धहि सतता हो नहीं, जारहि शुचिता नाहिं।।५।।

गृहमें आसक्त पुरुषोंको विद्या, मांसके आहारीको दया, द्रव्यके लोभीको सत्यता और व्यभिचारीको पवित्रता नहीं होती।।५।।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति
बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।

आमूलसिक्तः पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥६॥

दोहा—साधुदशाको नहिं लहैं, दुर्जन बहु शिख पाय।
दूध घीवसे सींचये, नींब न तदपि मिठाय ॥६॥

निश्चय है कि, दुर्जन अनेक प्रकारसे सिखलाया भी जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती, दूध और घीसे मूलसे पल्लवपर्यंत नींबका वृक्ष सींचा भी जाय पर इसमें मधुरता नहीं आती ॥६॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाह्तिं च तत् ॥७॥

दोहा—मनमलीन खल तीर्थमें, यदि सौ बार नहाहिं।
होय शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनहु दाहि ॥७॥

जिसके हृदयमें पाप है वही दुष्ट है, वह तीर्थमें सौवार स्नानसे भी शुद्ध नहीं होता जैसे मदिराका पात्र जलाया भी जाय तौ भी शुद्ध नहीं होता ॥७॥

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
सतं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥८॥

चा० छं०—जो न जानु उत्तमत्व जाहिके गुणानकी।
निन्दतो सो ताहितो अचर्ज कौन खानकी ॥
ज्यों किराति हाथिमाथ मोतियां विहायकै।
घूंघची पहीनती विभूषणै बनायके ॥८॥

जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरंतर उसकी निंदा करता है जैसे भिल्लिनी हाथीके मस्तकके मोतीको छोड़ घुघुंचीको पहिनती है ॥८॥

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटिसहस्रान्ते पूज्यन्ते स्वर्गविष्टपे ॥९॥

दोहा—जो पूरे इक बरसभर, मौनधार नित खात ।
युगकोटिनके सहस्र तक, स्वर्गमाहिं पुजि जात ॥९॥

जो वर्षभर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्रकोटि युग स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥९॥

कामक्रोधौ तथा लोभं स्वादुश्रृङ्गारकौतुके ।
अतिनिद्रातिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

सोरठा—काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ श्रृंगारहि कौतुकहिं ।
अतिसेवा निद्राहि, विद्यार्थी आठों तजै ॥१०॥

काम, क्रोध, लोभ, मीठी वस्तु, शृङ्गार, खेल, अतिनिद्रा और अतिसेवा इन आठोंको विद्यार्थी छोड़ देवे ॥१०॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥११॥

दोहा—बिनु जोते महि फूल फल, खाय रहे वन माहिं ।
श्राद्ध करै जो प्रति दिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहिं ॥११॥

विना जोती भूमिसे उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥११॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा ।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ॥१२॥

सोरठा—एकैबार अहार, तुष्ट सदा षट्कर्म रत ।
ऋतुमें प्रिया विहार, करै विप्र सो द्विज अहै ॥१२॥

एक समय के भोजनसे संतुष्ट रहकर पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना,

दान देना और लेना इन छः कर्मोंमें सदा रत हो और ऋतुकालमें स्त्रीका सङ्ग करे तो ऐसे ब्राह्मणको द्विज कहते हैं ।।१२।।

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यकृषिकर्मा यःस विप्रो वैश्य उच्यते ।।१३।।

सो०—निरत लोकके कर्म, पशुपालै वानिज करै ।
खेतीमें मन कर्म, करे विप्र सो वैश्य है ।।१३।।

सांसारिक कर्ममें रत हो और पशुओंका पालन, बनियाई और खेती करने वाला हो वह विप्र वैश्य कहलाता है ।।१३।।

लाक्षादितैलनालीनां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ।।१४।।

सो०—लाख आदि मद मांसु घीव कुसुम अरु नील मधु ।
तैल बेंचियत तासु, शूद्र जानिये विप्र यदि ।।१४।।

लाख आदि पदार्थ, तेल, नीली, कुसुम, मधु, घी, मद्य और मांस जो इसको बेचनेवाला हो वह ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ।।१४।।

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ।।१५।।

सोरठा—दंभी स्वारथ शूर, पर कारज घाले छली ।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहावतो ।।१५।।

दूसरेके कामका बिगाड़नेवाला, दम्भी, अपनेही अर्थको साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अंतःकरणमें कड़ा हो तो वह ब्राह्मण बिलार कहा जाता है।।१५।।

वापी कूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ।।१६।।

सो०—कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहि ।
नाशैमें भय त्याग, मलिछ कहावै विप्र सो ।।१६।।

बावली, कुवा, तालाव, वाटिका, देवालय इनके उच्छेद जो करनेमें निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाता है ॥१६॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चण्डाल उच्यते ॥१७॥

सो०–परनारीरत जोय, जो सुर गुरुधनको हरै ।
द्विज चंडाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥१७॥

देवताका द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरता है और परस्त्रीसे संग करता है और सब प्राणियोंमें निर्वाह करलेता है वह विप्र चांडाल कहलाता है ॥१७॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो सञ्चयस्तस्य वै
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितंनिर्वा-
णादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिका ॥१८॥

स०–मतिमानको चाहियेकी धन भोजन संचहिं नाहिं दियोई करैं। यहिते बलि विक्रम कर्णहु कीरति आजुलौं लोग कह्योई करैं ।। चिरसंचि मधू हमलोगनकी विनु भोगे दिये नसिबोई करैं । यह जानि भये मधुनाश दोऊ मधुमाखियां पांव घिसोई करैं ॥१८॥

सुकृतियोंको चाहिये कि, भोगयोग्य धनको और द्रव्यको देवें कभी न संचय- करें. क्योंकि कर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओंकी कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्त- मान है दान भोगसे रहित बहुत दिनसे संचित हमारे लोगोंका मधु नष्ट हो गया, ऐसा देखकर मधुमक्खियां मधुके नाश होनेके कारण अपने दोनों पाओंको घिसा करती हैं ॥१८॥

इति वृद्धचाणक्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः १२

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी
इच्छापूर्तिधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः ।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥१॥

स०—सानंद मंदिर पंडित पूत सुबोल रहै पुनि प्राणपियारी ।
इच्छित संपति पूरि स्वतीय रती रहै सेवक भौंहनिहारी ॥
आतिथ औशिवपूजन रोज रहै घर संचय सुअन्न औवारी ।
साधुन संग उपासन है नित धन्य अहै गृह आश्रमधारी ॥१॥

यदि आनंदयुत घर मिले और लड़के पंडित हों, स्त्री मधुरभाषिणी हो, इच्छाके अनुसार धन हो, अपनी ही स्त्रीमें रति हो, आज्ञापालक सेवक मिलें अतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा हो, प्रतिदिन गृहमें मीठा अन्न और जल मिलें सर्वदा साधुके संगकी उपासना तो यह गृहस्थाश्रमही धन्य है ॥१॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च
यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम् ।
अनन्तपारं समुपैति राजन्
यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः ॥२॥

दोहा—दिय श्रद्धा रु दयासंयुत, आरत विप्रहिं जौन ।
थोरो मिलै अनंत ह्वै, उतनो ही नहिं तौन ॥२॥

जो दयावान् पुरुष आर्त ब्राह्मणोंको श्रद्धासे थोड़ा भी दान देता है उस पुरुषको अनंत होकर वह मिलता है, न कि जो ब्राह्मणोंको दिया जाता है उतना ही मिलता है ॥२॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदादुर्जने
प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
येपुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥३॥

कवित्त—दक्षता स्वजन बीच दया परजनबीच, शठता सदाही रहे बीच दुर्जनको। प्रीति साधुजनमें खलनमाहिं अभिमान, सरल स्वभाव रहै बीच पंडितनके॥ शत्रुनमें शूरता सयाननमें क्षमा पूर, धूरताई राख फेर बिचि नारीजनके। ऐ सब कलामें कुशल रहैं जेते लोग, लोक तिथि रहि रहै बीच तिनहिनके ॥३॥

अपने जनमें दक्षता, दूसरे जनमें दया, दुर्जनमें सदा दुष्टता, साधुजनमें, प्रीति, खलमें अभिमान, विद्वानोंमें सरलता, शत्रुजनमें शूरता, बड़े लोगोंके विषयमें क्षमा, स्त्रीसे काम पड़नेपर धूर्तता इस प्रकारसे जो लोग कलामें कुशल होते हैं उन्होंमें लोककी मर्यादा रहती है ॥३॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो रे रे
जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥४॥

ह०छं०—यह पाणि, दानविहीन कान पुरान वेद सुने नहीं।
अरु आंखि साधुन दर्शहीन न पांव तीरथ गे कहीं॥
अनियाय वित्त भरो सुपेट उठ्यो शिरा अभिमानहीं।
वपु नीच निंदित छोड़ छोड़ अरे सियार सो वेगहीं ॥४॥

हाथ दानरहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधुका दर्शन नहीं किया, पांवोंने तीर्थगमन नहीं किया, अन्यायसे अर्जित धनसे उदर भरा है और

गर्वसे शिर ऊंचा होरहा है, रे रे सियार। ऐसे नीच निन्द्य शरीरको शीघ्र छोड़ ॥४॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्तारसज्ञा ।
येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौनैव कर्णौ धिक्का-
न्धिक्कान्धिगेतान् कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥५॥

छं.—जो नर यशुमति सुतचरणनमें भक्ति हृदयसे नहिं रखते।
जो राधाप्रिय कृष्णचंद्रके गुण जिह्वासे नहीं रटते ॥
जिनके दोउ कानन माहिं कथा रस कृष्णचन्द्रके नहिं गिरते।
कीर्तन माहिं मृदंग इन्हें धिक्धिक्, अपनी ध्वनिसे कहते ॥

श्रीयशोदासुतके पदकमलमें जिन लोगोंकी भक्ति नहीं रहती, जिन लोगोंकी जीभ अहीरोंकी कन्याओंके प्रियके अर्थात् श्रीकृष्णके गुणगानमें प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्णजीकी लीलाकी ललित कथा का आदर जिनके कान नहीं करते, उन लोगोंको धिक् है धिक् है धिक् है ऐसे कीर्तनका मृदंग सदा कहता है ॥५॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं नो-
लूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्
वर्षा नैव पतेत्तु चातकमुखेमेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं
विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥६॥

स०—पात न होय करीलनमें यदि, दोष वसंत हि कौन तहां है।
त्यों जब देखि सके न उलूक, दिनै तहं सूरज दोष कहां है॥
चातक आनन बूंद परै नहिं, मेघन दूषण कौन वहां है।
जो कुछ पूरव माथलिखा विधि मेटनको समरत्थ कहां है॥

यदि करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं होते तो वसंतका क्या अपराध है? यदि उलूक दिनमें नहीं देखता तो सूर्यका क्या दोष है? वर्षा चातकके मुखमें नहीं पड़ती इसमें

मेघका क्या अपराध है ? पहिलेही ब्रह्माने जो कुछ ललाटमें लिख रक्खा है उसे मिटानेको कौन समर्थ है ॥६॥

सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानां
साधूनां नहि खलसङ्गतः खलत्वम् ।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते
मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ॥७॥

व०ति०—सत्संगसों खलहु साधु स्वभाव सेवैं ॥
साधू न दुष्टपन संग परेउ लेवैं ॥
माटीहि वास कछु फूलन केरि पावै ।
माटीसुवास कहुं फूल नहीं बसावै ॥७॥

निश्चय है कि, अच्छेके संगसे दुर्जनोंमें साधुता आजाती है, परंतु साधुओंमें दुष्टोंकी संगतिसे असाधुता नहीं आती, फूलके गंधको मट्टी लेलेती है, पर मट्टीके गंधको फूल कभी नहीं धारण करते ॥७॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥८॥

दोहा—साधूदर्शन पुण्य हैं, साधु तीर्थके रूप ।
काल पाय तीरथ फलैं, तुरतही साधु अनूप ॥८॥

साधुओंका दर्शनही पुण्य है. इस कारण कि, साधु तीर्थरूप हैं समयसे तीर्थ फल देता है, साधुओंका संग शीघ्रही काम कर देता है ॥८॥

विप्रास्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ।
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः
कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥९॥

कवित्त—कहो या नगरमें महान कौन ? विप्र ! तौन तारनेके वृक्षके
कतारके कतार हैं । दाता कहो कौन है ? रजक देत सांझआनि
धोय शुभ्र वस्त्रनको लेत जो सकार है ।। दक्ष कहौ कौन है ?
प्रत्यक्ष सबही हैं दक्ष हरनको कुशल परायो धनदार हैं। कैसे
तुम जीवत बताय कहो मोसों मीत विषकृमिन्याय करलीजे
निरधार है ।।९।।

हे विप्र ! इस नगरमें कौन बड़ा है ? ताड़के पेडोंका समुदाय, कौन दाता है ? धोबी प्रातःकाल वस्त्र लेता है रात्रिमें दे देता है, चतुर कौन है ? दूसरे के धन और स्त्रीके हरण में सबही कुशल हैं, तो ऐसे नगरमें आप कैसे जीते हो ? हे मित्र ! विषका कीड़ा विषयहीमें जीता है वैसेही मैं भी जीता हूं ।।९।।

न विप्रपादोदककर्दमानि
न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि
श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ।।१०।।

दोहा—विप्रचरणके उदकसे, होत जहां नहिं कीच ।
वेद ध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ।।१०।।

जिन घरोंमें ब्राह्मणोंके पांवोंके जलसे कीचड़ न भया हो और न वेदशास्त्रके शब्दकी गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हों उनको श्मशानके समान समझना चाहिये ।।१०।।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ।।११।।

सोरठा—सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम ।
तिया शांति सुत जान, क्षमा यही षड् बंधु मम ।।११।।

सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता है, धर्म मेरा भाई है और दया मित्र,

शांति मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र. ये ही छः मेरे बंधु हैं किसी संसारी पुरुषने ज्ञानीको देखकर चकित हो पूछा कि, संसारमें माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र ये जितनाही अच्छेसे अच्छे हों उतनाही संसारमें आनंद होता है, तुझको परम आनंदमें मग्न देखता हूं तो तुझको भी कहीं न कहीं कोई उनमेंसे होगा. ज्ञानीने समझा कि, जिस दशाको देखकर यह चकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटुंबोंसे हो सकती है ! इस कारण जिनसे मुझे परम आनंद होता है इन्हींको इससे कहूं कदाचित् यह भी इनको स्वीकार करे ॥११॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१२॥

सोरठा--है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिंन रहै ।
निकट मृत्यु नित येह, चहिय कीन्ह संग्रह धरम ॥१२॥

शरीर अनित्य है, विभवभी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहता है इस कारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥१२॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण रणोत्सवः ॥१३॥

दोहा--नेवतन द्विजको है हरी, गौवनको नवघास ।
पति उत्सव युवंतीनको, मोहिं उत्सव रणखास ॥१३॥

निमंत्रण ब्राह्मणोंका उत्सव है और नवीन घास गौओंका उत्सव है, पतिके उत्साहसे स्त्रियोंका उत्साह होता है हे कृष्ण ! मुझको रण ही उत्सव है ॥१३॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥१४॥

दोहा--परधन माटीके सरिस, परतिय माता भेख ।
आपुसरीखे जगत् सब, जो देखे सो देख ॥१४॥

दूसरेकी स्त्रीको माताके समान, दूसरेके द्रव्यको ढेलाके समान और अपने समान सब प्राणियोंको देखता है वही देखता है ॥१४॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता
रूपेसुन्दरता शिवे भजनतात्वय्यस्तिभोराघव ॥१५॥

कवित्त–धर्म माहिं रुचि मुख मीठी वानि दानविच, शक्ति मित्र संग नाहिं ठगनेकी वानि है । वृद्धनमें नम्रता रु मनमों गंभीरता है,शुद्ध हैं आचार गुण विचार सज्ञान है ।। शास्त्रको विशेष ज्ञान रूप हू सुहावनो हैं, शिवजूके भजनको सब काल ध्यान हैं। कहे पुष्पवंत ज्ञानीराघो बीच जानो सब, और इकठौर कहिं इनको न भान हैं ।।१५।।

धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साहता, मित्रके विषयमें निश्चलता, गुरुसे नम्रता, अन्तःकरणमें गंभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रोंमें विशेषज्ञान, रूपमें सुंदरता और शिवकी भक्ति, हे राघव ! ये आपहीमें हैं ।।१५।

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरःक्षारो हि वारां निधिः ।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौ-
र्नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ॥१६॥

कवित्त–कल्पवृक्ष काठ अरु अचल सुमेरु अहै, चिंतामणि रत्नहू पषाण जाति जानिये । सूरजमें उष्णता रु कलाहीन चंद्रमा, सो सागरहु जल महाखारी यह जानिये ।। कामदेव नष्टतनु अरु राजा बली दैत्य, सुत कामधेनु गौकी पशु जाति मानिये । उपमा श्रीरामजूकी इनसे । कछू ना तुलै, और कौन वस्तु जासो उपमा बखानिये ।।१६।।

कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिंतामणि पत्थर है, सूर्यकी किरण अत्यन्त उष्ण हैं, चन्द्रमाकी किरण क्षीण हो जाती है, समुद्र खारा है, कामको शरीर नहीं है,

बलि दैत्य है, कामधेनु सदा पशुही है, इस कारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं दे सकते हैं हे रघुपति फिर आपको किसकी उपमा दीजाय ॥१६॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१७॥

दोहा–विद्या मित्र विदेशमें, घरमें नारी मित्र ।
रोगिहि औषध मित्र है, मरे धर्म है मित्र ॥१७॥

प्रवासमें, विद्या हित करती है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगग्रस्त पुरुषका हित औषध होताहै और धर्म मरेका उपकार करता है ॥१७॥

विनयं राजपुत्रेभ्यः पंडितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥१८॥

दोहा–राजतनसे यिवन अरु, बुधसे सुंदर वात ।
झूठ जुवारिनसे कपट, स्त्रियोंसे सीखी जात ॥१८॥

सुशीलता राजाके लड़कोंसे, प्रियवचन पंडितोंसे, असत्य जुआरियोंसे और छल स्त्रियोंसे सीखना चाहिये ॥१८॥

अनालोक्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥१९॥

दोहा–विनु विचार खर्चा करै, झगरे बिनहि सहाय ।
आतुर सब तियमों रहे, सो नर वेगि नशाय ॥१९॥

विना विचारे व्ययकरनेवाला, सहायकके न रहनेपर भी कलहमें प्रीति रखनेवाला और सब जातिकी स्त्रियोंमें भोग के लिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्रही नष्ट होता है ॥१९॥

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत ।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥२०॥

दोहा—नहिं अहार चितहि सुमत, चितहि धर्महि एक।
होहिं साथही नरनके, नरहिं आहार अनेक ॥२०॥

पंडितको आहारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, एक धर्मको निश्चयसे सोचना चाहिये-इसहेतु कि, आहार मनुष्योंको जन्मके साथही उत्पन्न होता है ॥२०॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२१॥

दोहा—लेन देन धन अन्नके, विद्या पढ़ने माहिं।
भोजन सभा विवादमें, तजै लाज सुख माहिं ॥२१॥

धनधान्य व्यवहार करनेमें, वैसे ही विद्याके पढ़ने पढ़ानेमें, आहारमें और राजाकी सभामें, किसीके साथ विवाद करनेमें जो लज्जा को छोड़े रहेगा वही सुखी होगा ॥२१॥

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः
स सहेतुः सर्वविद्यानांधर्मस्य च धनस्य च ॥२२॥

दोहा—एक एक जलबूंदके, परते घट भरिजाय।
सब विद्या धन धर्मको, कारण यही कहाय ॥२२॥

क्रमसे जलके एक एक बून्दके गिरनेसे घड़ा भर जाता है यही सब विद्या धर्म और धनका भी कारण है ॥२२॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः।
संपक्कमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥२३॥

दोहा—बीति गयेहू उमिरिके, खल खलही रहिजाय।
पकेहु मिठाई गुण, कहीं, नाहिं वारुण पाय ॥२३॥

जो खल रहता है सो वयके परिणाम पर भी खलही बना रहता है। अत्यन्त पकी भी तिक्त लौकी मीठी नहीं होती ॥२३॥

इति वृद्धचाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३

मुहूर्तमपि जीवेच्चेन्नरः शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

दोहा—वरु नर जिवे मुहूर्त्तभर, करिके शुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कल्पहु लोक दुहुं, करत विरोध अधर्म ॥१॥

उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्तभरका जीना भी श्रेष्ठ है, दोनों लोकोंके विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभरका भी जीना उत्तम नहीं है ॥१॥

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—गतवस्तुन शोचै नहीं, गुनै न होनीहार ।
काज करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ॥२॥

गतवस्तुका शोक और भावीकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कुशल लोग वर्तमानकालके अनुरोधसे प्रवृत्त होते हैं ॥२॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः ॥३॥

दोहा—देव सत्पुरुष अरु पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।
स्नानपान लहि बंधु सब, पंडित पाय सुवाद ॥३॥

निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृतिसे संतुष्ट होते हैं, पर बंधु स्नान और पानसे और पंडित प्रियवचनसे ॥३॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥४॥

दोहा—आयुबल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय ।
पांचों रहते गर्भमें, जीवनके रचिजाय ॥४॥

आयुर्दाय, कर्म, विद्या, धन और मरण ये पांच जब जीव गर्भमें रहता है, उसी समय सिरजे जाते हैं ॥४॥

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥५॥

दोहा–अचरज चरित विचित्र अति, बड़े जननके माहिं ।
जो तृणसम संपति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥५॥

आश्चर्य है कि, महात्माओंके विचित्र चरित्र हैं, लक्ष्मीको तृण समान मानते हैं, यदि मिलती है तो उसके भारसे नम्र हो जाते हैं ॥५॥

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुखानितत्त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥६॥

दोहा–जाहि प्रीति भय ताहिको, प्रीति दुःखको पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागिके, वसै तबै सुखमात्र ॥६॥

जिसको किसीमें प्रीति रहती है उसीको भय होता है, स्नेहही दुःखका भाजन है और सब दुःखका कारण स्नेह ही है इस कारण उसे छोड़कर सुखी होना उचित है ॥६॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥७॥

दोहा–पहिलहि करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुन बढ़त सुख बरत जो होनी गुणत अबूझ ॥७॥

आनेवाले दुःखके पहिलेसे उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धिमें विपत्ति आजाने पर शीघ्र ही उपाय सूझ जाता है ये दोनों सुखसे बढ़ते हैं और जो सोचता है कि, भाग्यवशसे जो होनेवाला है सो अवश्य होगा वह विनष्ट हो जाता है ॥७॥

राज्ञि धर्म्मिणि धर्म्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥८॥

दोहा—नृप धर्मी तो धर्म युत, पापी पाप अचार।
जस राजा तैसी प्रजा, चलत राज अनुसार ॥८॥

यदि धर्मात्मा राजा होता है तो प्रजा भी धर्मिष्ठ होती है, यदि पापी हो तो पापी होती है, सब प्रजा राजाके अनुसार चलती है जैसा राजा वैसी प्रजा भी होती है ॥८॥

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥९॥

दोहा—जीवित हूं समझै मरेउ, मनुजहि धर्म विहीन।
नहिं संशय चिरजीव सो, मरेहु धर्म जेहि विहीन ॥९॥

धर्मरहित जीतेको मृतके समान समझता हूं, निश्चय धर्मयुत मरा भी पुरुष चिरंजीवी ही है ॥९॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१०॥

दोहा—धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष न एकौ जासु।
अजाकण्ठकुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥१०॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन्होंमेंसे जिसको एक भी नहीं रहता, उसका जन्म बकरीके गलस्तनके समान निरर्थक है ॥१०॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥११॥

दोहा—और अगिन यश दुसहसों, जरि जरि दुर्जन नीच।
आप न तैसो करिसकैं, तब तिहि निन्दहिं बीच ॥११॥

दुर्जन दूसरेकी कीर्तिरूपदुःसह अग्निसे जलकर उसके पदको नहीं पाते इसलिए उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥११॥

बन्धाय विषयासङ्गो मुक्तो निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

दोहा–विषयसंग परिबंध करु, विषयहीन निर्वान ।
वंध मोक्ष इन दुहुंनको, कारन मनय न आन ॥१२॥

विषयमें आसक्त मन वंधका हेतु है विषयसे रहित मुक्तिका, मनुष्योंके बंध मोक्षका कारण मन ही है ॥१२॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनः ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥१३॥

दोहा–ब्रह्मज्ञानसों देहको, विगत भये अभिमान ।
जहां जहां मन जात है, तहां समाधि हि जान ॥१३॥

परमात्माके ज्ञानसे देहके अभिमानका नाश हो जानेपर जहां जहां मन जाता है तहां तहां समाधिही है ॥१३॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥१४॥

दोहा–इच्छित सब सुख केहि मिले, जब सब दैवाधीन ।
यहि ते संतोषहि शरण, चहिये चतुर कहं कीन ॥१४॥

मनका अभिलषित सब सुख किसको मिलता है जिस कारण सब दैवके वश हैं इससे संतोषपर भरोसा उचित है ॥१४॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥१५॥

दोहा–जैसे धेनु हजारमें, वत्स जाय लखि मात ।
तैसेही कीन्हो कर्म, कर्ताके ढिग जात ॥१५॥

जैसे सहस्र धेनुओंके रहते बछड़ा माताहीके निकट जाता है, वैसे ही जो कुछ कर्म किया जाता है सो कर्ताहीको मिलता है ॥१५॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनो दहति संसर्गाद्वनं सङ्गविवर्जनात् ॥ १६ ॥

दोहा—अनथिरकारजते न सुख, जन औ वन दुहुंमाहिं ।।
जन तेहिं दाहै सङ्गते, वन विन संगहिं दाहिं ।।१६।।

जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें और न वनमें सुख पाता है। जन उसको संसर्गसे जलाता और वन संगके त्यागसे जराता है ।।१६।।

तथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

दोहा—जिमि खोदेहीते मिलै, भूतलके मधि वारि।
तैसेहि सेवाके किये, गुरु विद्या मिल धारि ।।१७।।

जैसे खननेके साधनसे खनके नर पातालके जलको पाता है वैसे ही गुरुगत विद्याको सेवक (शिष्य, शूश्रूषा करके) पाता है ।।१७।।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥१८॥

दोहा—फल सिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसारि।
तोहू सुमति महान जन, कारज करहिं विचारि ।।१८।।

यद्यपि फल पुरुषके कर्मके अधीन रहता है और बुद्धि कर्मके अनुसार ही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारके ही काम करते हैं ।।१८।।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥१९॥

दोहा—निज तिय धर्म भोजनतिहूं, चहिये कीन्ह संतोष।
पठन दान तपमें नहीं, तहं संतोष है दोष ।।१९।।

अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें संतोष करना उचित है। पढ़ना जप और दान इन तीनोंमें संतोष कभी नहीं करना चाहिये ।।१९।।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते।
शुनो योनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ २० ॥

दोहा—एक अक्षर दातहु गुरुहिं, जो नर वन्दे नाहिं।
जन्म सैकड़ा श्वान ह्वै, जनै चंडालन माहिं ॥२०॥

जो एक अक्षरकी शिक्षा देनेवाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्तेके सौ योनिको भोगकर चांडालोंमें जन्मता है ॥२०॥

युगान्ते प्रचलेन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः।
साधवः प्रतिपन्नार्थां न चलन्ति कदाचन ॥ २१ ॥

दोहा—सातसिंधु कल्पांत चलु, मेरु चलै जुग अंत।
परे प्रयोजनतें कबहुं, नहिं चलते हैं संत ॥२१॥

युगके अंतमें सुमेरु चलायमान होता है और कल्पके अंतमें सातों सागर परंतु साधुलोग स्वीकृत अर्थसे कभी नहीं विचलते ॥२१॥

इति वृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्या विधीयते ॥ १ ॥

म०छंद—अन्न वारि चारु बोल। तीनि रत्न भू अमोल।
मूढलोगने पखान। टूक रत्नके बखान ॥ १॥

पृथ्वीमें जल, अन्न, और प्रियवचन ये तीनही रत्न हैं मूढोंने पाषाणके टुकड़ोंमें रत्नकी गिनती की है ॥१॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनं व्यसनानिच ॥ २ ॥

म छं०–निर्धनत्व दुःख राग । बंध औ विपत्ति शोक ।
है स्वपापवक्ष जात । ए फलै धरेके गात ।।२।।

जीवोंको अपने अपराधरूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुःख, बंधन और विपत्ति ये फल होते हैं ।।२।।

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

म छं०–फेरि वित्त फेरि मित्त । फेरि ती धराहु मित्त ।
फेरि फेरि सर्व येह । मानुषी मिलै न देह ।।३।।

धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी ये फिर फिर मिलते हैं, परंतु यह मनुष्य शरीर फिर फिर नहीं मिलता ।।३।।

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः ।
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणै रपि निवार्यते ॥ ४ ॥

म० छं०–एक ह्वै अनेक लोग । वीर्य शत्रु जीति योग ।
मेघ धार वारि देत । घास ढेर वारि देत ।।४।।

निश्चय है कि, बहुतजनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेता है, तृण समूह भी वृष्टिकी धाराके धरनेवाले मेघका निवारण करता है ।।४।।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तरं वस्तुशक्तितः ॥ ५ ॥

म०छं०–थोर तेल वारि माहिं । गुप्तहू खलानि पाहिं ।
दान शास्त्र पात्र ज्ञानि । ये बढ़ै स्वभाव आनि ।।५।।

जलमें तेल, दुर्जन में गुप्तवार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमानमें शास्त्र ये थोड़े ही हों तो भी वस्तुकी शक्तिसे अपने आप विस्तारको प्राप्त हो जाते हैं ।।५।।

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥ ६ ॥

म०छं०–धर्मवारता मशान । रोगमाहिं जौन ज्ञान ।
जो रहै वही सदोइ बंध । को न मुक्त होइ ॥६॥

धर्मविषयक कथामें श्मशानपर और रोगियोंको जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन बंधनसे मुक्त न होता ॥६॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदयः ॥ ७ ॥

म०छं०–आदि चूकि अंत शोच । जो रहै विचारि दोष ।
पूर्वही बनै जो तैस । कौन को मिले न ऐस ॥७॥

निंदित कर्म करनेके पश्चात् पछतानेवाले पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती ॥७॥

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो नहि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ ८ ॥

म०छं०–दान नय विनय नगीच । शूरता विज्ञान बीच ।
कीजिये अचरज नाहिं । रत्नढेर भूमि माहिं ॥८॥

दानमें, तपमें, शूरतामें, विज्ञतामें, सुशीलतामें और नितिमें विस्मय नहीं करना चाहिये इस कारण कि, पृथ्वीमें बहुत रत्न हैं ॥८॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः ।
योयस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥९॥

म०छं०–दूरहू बसै नगीच । जासु जौन चित्तबीच ।
जो न जासु चित्त पूर । है समीपहूं सो दूर ॥९॥

जो जिसके हृदयमें रहता है वह दूर भी हो तो भी वह दूर नहीं जो जिसके मनमें नहीं है वह समीप भी हो तो भी वह दूर है ॥९॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम् ।
व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥१०॥

म०छं०–जाहिते चहै सुपास। मीठी बोलि तासु पास।
व्याध मारिबे मृगान। मंजु गावतो सुगान ।।१०।।

जिससे प्रियकी वांछा हो उससे सदा प्रिय बोलना उचित है व्याध मृगके वधके निमित्त मधुरस्वरसे गीत गाता है ।।१०।।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः।
सेव्यन्तां मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥ ११ ॥

म०छं०–अतिपास नाशहेत। दूरहू फलै न देत।
सेवनीय मध्यभाग। गुरू भूप नारि आग ।।११।।

अत्यंत निकट रहनेपर विनाशके हेतु होते हैं दूर रहनेसे फल नहीं देते इस हेतु राजा, अग्नि गुरु और स्त्री इनको मध्यम अवस्थासे सेवना चाहिये ।।११।।

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पो राजकुलानि च।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ १२ ॥

म०छं०–अग्नि सर्प मूर्ख नारि। राजवंश और वारि।
यत्नसाथ सेवनीय। सद्य ये हरैं छ जीव ।।१२।।

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख और राजाके कुल ये सदा सावधानतासे सेवनके योग्य हैं, ये छः शीघ्र प्राणके हरनेवाले हैं ।।१२।।

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

म०छं०–जीवत गुणी जो होय। वा सुधर्मयुक्त जोय।
धर्म औ गुणो न जासु। जीवना सुव्यर्थ तासु ।।१३।।

वही जीता है, जिसके गुण हैं, और वही जीता है जिसके धर्म है गुण और धर्मसे हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ।।१३।।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
पुरा पञ्चदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥ १४ ॥

म०छं०—चाहते वशै जो कीन। एक कर्म लोग तीन।
पंद्रहोंके तौ मुखान। गान तौ बहोरु आन ॥१४॥

जो एकही कर्मसे जगत्को वश किया चाहते हो तो पहिले पंद्रहोंके मुखसे। मनको निवारण करो, तात्पर्य यह है कि, आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं. मुख, हाथ पांव, लिंग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं. इन पन्द्रहोंसे मनरूप गौको निवारण करना उचित है। यहां गोशब्द गौ और मनरूप इन्द्रियका वाचक है ॥१४॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम्।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः ॥ १५ ॥

सो०—प्रिय स्वभाव अनुकूल, योग्य प्रसंगै वचन पुनि।
निज बलके सम तूल, कोप जानु पंडित सोई ॥१५॥

प्रसङ्गके योग्य वाक्य, प्रकृतिके सदृश प्रिय और अपनी शक्तिके अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान् है ॥१५॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणपःकामिनी मांसं योगिभिःकामिभिःश्वभिः ॥१६॥

सो०—वस्तु एकही होय, तीनि तरह देखी गती।
रति मृत मांस सोय, कामि योगि कुत्तेनसों ॥१६॥

एकही देहरूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पड़ती है. योगी लोग उसको अति निंदित मृतकरूपसे, कामी पुरुष कांता रूपसे और कुत्ते मांस रूपसे देखते हैं ॥१६॥

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम्।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

सो०—सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनौ।
अपने घरका मर्म, चतुर नाहिं प्रगटित करै ॥१७॥

सिद्ध औषध, धर्म, अपने घरका दोष, मैथुन. कुअन्नका भोजन और निंदित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमान्को उचित नहीं है ॥१७॥

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥१८॥

सो०–तोलौं मौने ठानि, कोकिल हू दिन काटते ।
जौलौं आनंदखानि, सबको वाणी होत है ॥ १८ ॥

तबलौं कोकिल मौनसाध दिन बिताता है, जबलौं सब जनोंको आनंद देनेवाली वाणीसे संपन्न न होता है ॥१८॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ १९ ॥

सो०–धर्म धान्य धनवानि, गुरुवच औषध पांच यह ।
ग्रहण करन शुभ जानि, भले और विधि नहिं जिवै ॥१९॥

धर्म, धन, धान्य गुरुका वचन और औषध यदि हों तो इनको भली भांतिसे सुगृहीत करना चाहिये, जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥१९॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥ २० ॥

सो०–तजौ दुष्ट सहवास, भजो साधु संगम रुचिर ।
करौ पुण्य परकाश, हरि सुमिरौ जग नित्य नहिं ॥२०॥

खलका संग छोड़, साधुकी संगतिको स्वीकार कर दिन रात पुण्य किया करो और ईश्वरका नित्य स्मरण कर. इस कारण कि, संसार अनित्य है ॥२०॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥१॥

दोहा—जासु चित्त सब जन्तुपर, गलित दया रसमाह ।
तासु ज्ञान मुक्ती जटा, भस्मलेप करु काह ।।१।।

जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे पिघल जाता है उसको ज्ञानसे, मोक्षसे, जटासे और विभूतिके लेपनसे क्या ।।१।।

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत् ।।२।।

दोहा—एको अक्षर जो गुरू, शिष्य हि देत जनाय ।
भूमिमाहिं धन नाहिं वह, जो दै अनृण कहाय ।।२।।

जो गुरु शिष्यको एकभी अक्षरका उपदेश करता है पृथ्वीमें ऐसा द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उससे उरिण होय ।।२।।

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम् ।।३।।

दोहा—खल कांटा इन दुहुँनको, दोई जगत उपाय ।
जूतनते मुख तोड़वो, रहिवो दूर बचाय ।।३।।

खल और कांटा इनका दोही प्रकारका उपाय है जूतासे मुखका तोड़ना या दूसरा त्याग ।।३।।

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ।।४।।

दोहा—बसन दर्शन राखै मलिन, बहु भोजन कटु बैन ।
सोवै रवि छिपवत उगत, तजु श्री जो हरि ऐन ।।४।।

मलिन वस्त्रवालेको, जो दांतोंके मलको दूर नहीं करता उनको, बहुत भोजन

करनेवालेको, कटुभाषीको, सूर्यके उदय और अस्तके समयमें सोनेवालेको लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु हो ।।४।।

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते-
ऽतोऽर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥५॥

दोहा—तजहिं तीय मीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये सेवैं बहुरि, धनै बंधु जगमाहिं ।।५।।

मित्र, स्त्री, सेवक और बंधु ये धनहीन पुरुषको छोड़ देते हैं और वही पुरुष यदि धनी हो जाता है तो फिर उसीको आश्रय करते हैं अर्थात् धनही लोकमें बंधु है ।।५।।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥६॥

दोहा—करि अनीति जोरेउ धन, दशै वर्ष ठहराय ।
ग्यारहवें लागते हि, जरा मूलसों जाय ।।६।।

अनीतिसे अर्जित धन दश वर्ष पर्यंत ठहरता है । ग्यारहवें वर्षके प्राप्त होनेपर मूलसहित नष्ट हो जाता है ।।६।।

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम् ॥७॥

दोहा—खोटी भल समरत्थ पहँ, भलो खोट लहि नीच ।
विषौ भयो भूषण शिवहि, अमत राहु कहँ मीच ।।७।।

अयोग्य भी वस्तु समर्थको योग्य होता है और योग्य भी दुर्जन को दूषण, अमृतने राहुको मृत्यु दिया, विष भी शंकरको भूषण हुआ ।।७।।

तद्भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् ।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥८॥

दोहा—द्विज उबरे भोजन सोइ, परमहं मैत्री सोय ।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दंभ विनु जोय ॥८॥

वही भोजन है जो ब्राह्मणके भोजनसे बचा है, वही मित्रता है जो दूसरेमें की जाती है, वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और विना दंभके जो किया जात है वही धर्म है ॥८॥

मणिर्लुठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥९॥

दोहा—मणि लोटत रहु पांवतर, कांच रह्यो शिर जाय ।
लेत देत मणि मणि रहै, कांच काच रहि जाय ॥९॥

मणि पांवके आगे लोटती हो और कांच शिरपर भी रक्खा हो परंतु क्रय विक्रयके समयमें काच काच ही रहता है और मणि मणि ही ॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥१०॥

दोहा—बहुत विघ्न कम काल हैं, विद्या शास्त्र अपार ।
जलसे जैसे हंस पय, लीजै सार निसार ॥१०॥

शास्त्र अनंत हैं और विद्या बहुत, काल थोड़ा है और विघ्न बहुत इस कारण

जो सार वस्तु हो उसको ले लेना उचित है जैसे हंस जलके मध्यसे दूधको ले लेता है ।।१०।।

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वा यो भुंक्ते स वै चाण्डाल उच्यते ॥११॥

दोहा—दूर देशते राह थकि, विनु कारज घर आय ।
तेहि विनु पूजे खाय, सो चंडाल कहाय ।।११।।

दूरसे आयेको, पथसे थकेको और निरर्थक गृह पर आयेको विना पूजे जो खाता है वह चांडालही गिना जाता है ।।११।।

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वीपाकरसं यथा ॥१२॥

दोहा—पढ़े चारहू वेदहूं, धर्मशास्त्र बहु वाद ।
आपुहि जानै नाहिं ज्यों, करछिहि व्यंजन स्वाद ।।१२।।

चारों वेद अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं परंतु आत्माको नहीं जानते जैसे कलछी पाकके रसको ।।१२।।

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे ।
तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥१३॥

दोहा—भवसागरमें धन्य है, उलटी यह द्विजनाव ।
नीचे रहि तरि जात सब, ऊपर रहि बुड़िजाव ।।१३।।

यह ब्राह्मणरूप नाव धन्य है, संसाररूप समुद्रमें इसकी उलटीही रीति है उसके नीचे रहनेवाले सब तरते हैं और ऊपर रहनेवाले नीचे गिरते हैं। अर्थात् ब्राह्मणसे जो नम्र रहता है वह तर जाता है और जो नम्र नहीं रहता है वह नरकमें गिरता है ।।१३।।

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीना-
ममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ।

भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति ॥१४॥

दोहा—सुधाधाम औषधिप छवियुत अमियशरीर ।
तऊ चंद रविढिग मलिन, परघर कौन गंभीर ॥१४॥

अमृतका घर, औषधियोंका अधिपति, जिसका शरीर अमृतमय और शोभायुत भी चन्द्रमा सूर्यके मण्डलमें जाकर निस्तेज होता है दूसरेके घरमें बैठकर कौन लघुता नहीं पाता ? ॥१४॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरंदमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥

दोहा—यह अलि नलिनीपानमपि, तेहि रसमद अलसान ।
परि विदेश विधिवश कुरै, फूलरसे बहु मान ॥१५॥

यह भौंरा जब कमलिनीके पत्तोंके मध्यमें था तब कमलिनीके फूलके रससे आलसी बना रहता था, अब दैववशते आकर कोरैयाके फूलको बहुत समझता है॥१५॥

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषादाबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे । गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं तस्मात्खिन्ना सदाऽहं द्विजकुलसदनं नाथ नित्यं त्यजामि ॥१६॥

सवैया—क्रोधसे तात पियो चरणनसे स्वामि हतो जिन रोषसे छाती ।
बालसे वृद्ध भये तक मुखमें भारति वैरिणि धो संघाती ॥
मम जो वास पुष्प उन तोड़त शिवजीकी पूजा होत प्रभाती ।
तासे दुःख मान सदैव हरि मैं ब्राह्मणकुलका त्याग चिताती ॥१६॥

अगस्त्य ऋषिने रुष्ट होकर मेरे पिताको पी डाला और दूसरे (भृगु) ने क्रोधके मारे पांवसे मेरे पतिको (आपके) मारा, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं बैठे सदा लड़कपनसे लेकर मुखविवरमें मेरी वैरिणीको रखते हैं और प्रतिदिन पार्वतीके

पतिकी पूजाके निमित्त मेरे गृहरूप कमलोंको कटाते हैं. हे नाथ ! इससे खेद पाकर ब्राह्मणोंके घरको सदा छोड़े रहती हूं ।।१६।।

बंधनानि खलु संति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोशे॥ १७॥

दोहा–बंधन बहुतेरे अहैं, प्रेमबंध कछु और ।
काठो काटनमें निपुण, बंध्यो कमल महँ भौंर ।।१७।।

बंधन तो बहुत हैं परंतु प्रीतिकी रस्सीका बंधन औरही है काटने छेदनेमें कुशल भी भौंरा कमलके कोशमें निर्व्यापार हो जाता है ।।१७।।

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं
बद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥१८॥

दोहा–कट्यो न चंदन महक तजु, बंध्यो न खेल गजेश ।
ऊख न पेरिउ मधुरता, शील न सुकुल कलेश ।।१८।।

जैसे काटा चन्दनका वृक्ष गंधको त्याग नहीं देता, बंधा भी गजपति विलासको नहीं छोड़ता, कोल्हूमें पेरी भी ऊख मधुरता नहीं छोड़ता, वैसेही दरिद्र भी कुलीन सुशीलता आदि गुणोंका त्याग नहीं करता ।।१८।।

उर्व्यां कोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया तेन त्वं दिवि भूतले च विदितो गोवर्द्धनोद्धारकः । त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेण तद्गण्यते किं वा केशव भाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते ॥१९॥

स०– कोऊ भूमीके माहिं लघु पर्वत करधारकै नाम तुम्हार पर्यो है ।
भूतल स्वर्गके बीच सभीने जो गिरिवर धारि प्रसिद्ध कियो है ।।

तीनलोकके धारक तुमको धारों सदा कुच कौन गिनत है ।
ताते बहु कहना है जो वृथा यश लाभ हरे निज पुण्य मिलत है।१९।

पृथ्वीपर किसी अत्यन्त हलके पर्वतोंको अनायाससे बाहुओंके ऊपर धारण करने से आप स्वर्ग और पृथ्वीतलमें सर्वदा गोवर्द्धनधारी कहलाते हैं, तीनों लोकोंके धरनेवाले आपको केवल कुचोंके अग्रभागमें धारण करती हूं यह कुछ भी नहीं गिना जाता है, हे केशव ! बहुत कहनेसे क्या ? पुण्योंसे यश मिलता है ।।१९।।

इति वृद्धचाणक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

षोडशोऽध्यायः १६

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ।।१।।

कवित्त–कीन नहीं ध्यान हरिपदको जो, मुक्तिपददाता शास्त्र बीचमें कह्यो है । स्वर्गके भी द्वारको खोलत है बलसे, उस धर्मका भी संचय नहीं कियो है ।। नारिनके पुष्ट कुच स्वप्नमें न देखे ऐसो, खोटो जन्म हमहीको आय मिल्यो है । माताके यौवन वन छेदन कुठार भयो, यही म्हारे नाम जगमाहिं तुल्यो है ।।१।।

संसारसे मुक्त होनेके लिये विधिसे ईश्वरके पदका ध्यान मुझसे न हुआ, स्वर्गद्वारके कपाटके तोड़नेमें समर्थ धर्मका भी अर्जन न किया और स्त्रीके दोनों पीनस्तन और जंघाओंका आलिङ्गन स्वप्नमें भी न किया, मैं माताके युवापनरूप वृक्षके केवल काटनेमें कुल्हाड़ा हुआ ।।१।।

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यंत्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ।।२।।

दोहा–बोलैं हैं कोइ औरसे, चितवत हैं कहिं और।
मनमें चिन्ता अन्यको, न स्त्री रति इकठौर ॥२॥

भाषण दूसरेसेही करती है, दूसरे को विलाससे देखती हैं, हृदयमें दूसरेहीकी चिंता करती है, स्त्रियोंकी प्रीति एकमें नहीं रहती ॥२॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी ।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥३॥

दोहा–जो मूरख ऐसे गिनत, कामिनीका मोहि ध्यान।
नीचे उसके वश परचो क्रीडापक्षि समान ॥३॥

जो मूर्ख अविवेकसे समझता है कि, यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर खेलके पक्षीके समान नाच करता है ॥३॥

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणो यस्यापदोऽस्तं गताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राजप्रियः ।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोऽर्थी गतो गौरवं को
वा दुर्जनदुर्गमेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि ॥४॥

सवैया–धनसे किसको नहिं गर्व भयो, किस कामिक दुःख समूह नशा ।
किसके मन खंडित नाहिं किये, जग कामिनि राजहिं प्यार कसा ॥
को कालके गालमें नाहिं परचो, कोउ याचक गौरव मान लसा ।
दुर्जनके वशमें पड़के सुखमारग माहिं जा कौन धसा ॥४॥

धन पाकर गर्वी कौन न हुआ, किस विषयकी विपत्ती नष्ट हुई, पृथ्वीमें किसके मनको स्त्रियोंने खण्डित न किया, राजाको प्रिय कौन हुआ, कालके वश कौन नहीं हुआ, किस याचकने गुरुता पाई, दुष्टोंकी दुष्टतामें पड़कर संसारके पथमें कुशलतासे किसने सुख पाया ? ॥४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा
न श्रूयते हेममयी कुरङ्गी ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥५॥

दोहा–रचो न देख्यो नाहिं यहि, सुनो न कनक मृग गात ।
तऊ राम तृष्णा स्वमति, नाश काल फिरि जात ।।५।।

सोनेकी मृगी न पहिले किसीने रची, न देखी और न किसीको सुन पड़ती है तो भी रघुनन्दनकी तृष्णा उस पर हुई । ठीक है – विनाशके समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ।।५।।

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थिताः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥६॥

सोरठा–गुणसे पाय बढ़ाय, नहीं ऊंच बेठक टंगे ।
बैठि ऊंचघर जाय, कहीं काग होवै गरुड़ ।।६।।

प्राणी गुणोंसे उत्तमता पाता है ऊंचे आसन पर बैठकर नहीं, कोटके ऊपरके भागमें बैठा कौवा क्या गरुड़ हो जाता है ? ।।६।।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि संपदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथा वंद्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥७॥

सोरठा–सब थल गुणहि पुजाय, नहीं महा तिहुं संपदा ।
बंद कि तस बिधु जाय, पूर क्षीण अकलंक जस ।।७।।

सब स्थानोंमें गुण पूजे जाते हैं, वड़ी संपत्ति नहीं. पूर्णिमाका पूर्ण भी सकलङ्क चन्द्रमा क्या वैसा वंदित होता है जैसा विना कलंकके द्वितीयाका दुर्वल ।।७।।

परस्तुतगुणैर्यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥८॥

दोहा—औरनके वर्णन किये, विन गुणहू गुणवान ।
इन्द्रौ लघुताई लहै, निज मुख किये बखान ।।८।।

जिसके गुणोंको दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी हो तो गुणवान कहा जाता है इन्द्र भी यदि अपने गुणोंकी आप प्रशंसा करे तो उससे लघुता पाता है ।।८।।

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ।।९।।

दोहा—पहुँचि विवेकी पुरुष पहँ, अति शोभा गुण पाव ।
घनी रत्नछवि तव कढ़ै, जव लहि कनक जड़ाव ।।९।।

विवेकी गुण पाकर सुंदरता पाते हैं जब रत्न सोनामें जड़ा जाता है तब अत्यन्त सुंदर देख पड़ता है ।।९।।

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ।।१०।।

दोहा—गुणसे विष्णु समानहूं, विनु अवलंबहि नाहिं ।
होय अमोलौ मणि तेऊ, कनक औलंवहि चाहि ।।१०।।

गुणोंसे ईश्वरके सदृश भी निरालंब अकेला पुरुष दुःख पाता है अमोल भी माणिक्य सोनाके अवलंबकी (अर्थात् उसमें जड़ानेकी) अपेक्षा करता है ।।१०।।

अतिक्लेशेन ये ह्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च ।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते त्वर्था मा भवंतु मे ।।११।।

दोहा—अति कलेशकरि धर्म तजि, अथवा परि अरि पांच ।
जो मिलती संपत्ति सो, मेरे पास न आव ।।११।।

अत्यंत पीड़ासे, धर्मके त्यागसे और वैरियोंकी प्रणतिसे जो धन होते हैं सो मुझको नहीं हों ।।११।।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या तु वेश्येव सामान्या पथिकैरपि भुज्यते ॥१२॥

दोहा–जो सुतीयसम एकरति, तेहि संपति करु काह ।
जो वेश्यासम हो तेहि, भोगहि चलतो राह ॥१२॥

उस संपत्तिसे लोग क्या कर सकते हैं ? जो वधू के समान असाधारण है-वेश्याके समान सर्वसाधारण हो वह पथिकोंके भी भोगमें आ सकती है ॥१२॥

धनेषु जीवितव्ये च स्त्रीषु चाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥१३॥

दोहा–तिय जीवन धन अशनते, विनहि अघाने भोग ।
गये जाइ हैं जात हैं, सब ही प्राणी लोग ॥१३॥

धनमें, जीवनमें, स्त्रियोंमें और भोजनमें अतृप्त होकर सब प्राणी जाते हैं और जायँगे ॥१३॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः ।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥१४॥

दोहा–क्षीण होहिं सब दान औ, यज्ञ होम बलि कीन ।
पात्रदान सबको अभय, होय कबहुं नहिं छीन ॥१४॥

सब दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट हो जाते हैं सत्पात्रको दान और सब जीवोंको अभयदान ये क्षीण नहीं होते ॥१४॥

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचतामिति ॥१५॥

दोहा–तृण लघु तेहिते लघु रुई, तेहिते याचक लोग ।
पवन उड़ावे नाहिं कस, डरेउ याचना योग ॥१५॥

---

१ तृणाल्लघुतरस्तूलः । २ याचयेदिति । इति च पाठान्तरम् ।

तृण सबसे लघु होता है, तृणसे रुई हलकी होती है, रुईसे भी याचक, इसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाता ? वह समझता है कि, यह मुझसे भी मांगेगा ॥१५॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात् ।
प्राणत्यागे क्षणं दुखं मानभंगे दिने दिने ॥१६॥

दोहा—मानभंग सहि जीवनसो, भलो प्राणकर त्यागु ।
प्राणत्याग क्षण एक दुख, मानभंग नित लागु ॥१६॥

मानभंगपूर्वक जीनेसे प्राणका त्याग श्रेष्ठ है, प्राणत्यागके समय क्षणभर दुःख होता है मानके नाश होने पर दिन दिन ॥१६॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥१७॥

सोरठा—सबै अनंदित होयँ, मधुर वचनको पाइके ।
तेहिते बोलिय सोय, वचनहु कहां दरिद्रता ॥१७॥

मधुर वचनके बोलनेसे सब जीव संतुष्ट होते हैं, इस कारण उसीका बोलना योग्य है वचनमें दरिद्रता कौन ? ॥१७॥

संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु सङ्गतिः सुजनैर्जनैः ॥१८॥

दोहा—जक्तके कटुतरु फल दोई, अहैं अमृत सम तूल ।
सरस वचन प्रिय औ सुजन, संगतिहूं अनुकूल ॥१८॥

संसाररूप कटुवृक्षके दोही फल हैं रसीला प्रियवचन और सज्जनके साथ संगति ॥१८॥

बहुजन्मसु चाभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देहमभ्यस्यते पुनः ॥१९॥

दोहा—दान पठन तप माहिं जो, जन्म जन्म अभ्यास ।
ताहीके संयोगते, फिरि फिरि देह प्रकाश ॥१९॥

जो जन्म २ दान, पठन, तप इनका अभ्यास किया जाता है वह अभ्यासके योग से देहका अभ्यास फिर २ प्राप्त करता है ।।१९।।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥ २० ॥

दोहा–विद्या पुस्तक जो रही, जो धन परकर माहिं ।
काम परे विद्या न वह, अहै धनहु वह नाहिं ।।२०।।

जो विद्या पुस्तकोंहीमें रहती है और दूसरोंके हाथोंमें जो धन रहता है, काम पड़ जानेपर न वह विद्या है, और न वह धनही है ।।२०।।

इति वृद्धचाणक्ये षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

सप्तदशोऽध्यायः १७

पुस्तके प्रत्ययाधीते नाधीते गुरुसन्निधौ ।
सभामध्ये न शोभेत जारगर्भ इव स्त्रियः ॥ १ ॥

दोहा–प्रतिप्रतीति विनु गुरु पढ़्यो, सोहं न सभा सिधारि ।
ज्यों पर पुरुषहि संगकृत, गर्भधारिकरि नारि ।।१।।

जिनने केवल पुस्तककी प्रतीतिसे पढ़ा गुरुके निकट न पढ़ा वे सभाके बीच व्यभिचारके गर्भवाली स्त्रियोंके समान नहीं शोभते ।।१।।

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत ॥ २ ॥

तो०छं–उपकार करै उपकार करै, अरु मारन पै तेहि मारि लरै ।
खलताइ करै खलताइ करै, तहँ दोष नहीं मनमाहि धरै ।।२।।

उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना चाहिये और मारने पर मारना इसमें अपराध नहीं होता, इस कारण कि, दुष्टता करने पर दुष्टताका आचरण करना उचित होता है ।।२।।

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

दोहा–दूर होउ वा दूर वसु, दुराराध्यहू जोउ ।
सो सब तपसे साधि है; तप बल सम नहिं कोउ ॥३॥

जो दूर है, जिसकी आराधना नहीं हो सकती और जो दूर वर्तमान है, वे सब तपसे सिद्ध हो सकते हैं इस कारण सबसे प्रबल तप है ॥३॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यदस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥४॥

सवैया–लोभ तबै कस अवगुण आन दुजो कस पाप सबै लुइराई ।
सत्थ रहे तपसे तब का मन शुद्ध वृथा । तब तीरथ जाई ॥
शीलहुई फिरि का गुण और कहा तिन भूषण जो महिताई ।
वेद भयो धनते तब का मृत्यु कौन जबै अपकीरति छाई ॥४॥

यदि लोभ है तो दूसरे दोषसे क्या, यदि चुगली है तो और पापोंसे क्या, यदि सत्यता है तो तपसे क्या, यदि मन स्वच्छ है तो तीर्थसे क्या, यदि सज्जनता है तो भाषणोंसे क्या, यदि अच्छी विद्या है तो धनसे क्या, यदि अपयश है तो मृत्युसे क्या ॥४॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ।
शंखो भिक्षाटनं कुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

दोहा–पितु रत्नाकर लच्छिमी, सगी बहिन श्रुति गाव।
शंख भीख मांगे तऊ, धन विनु दिये न पाव ॥५॥

जिसका पिता रत्नोंकी खानि समुद्र है, लक्ष्मी जिसकी बहिन, ऐसा शंख भीख मांगता है, विना दिया नहीं मिलता ॥५॥

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥ ६ ॥

दोहा–शक्तिहीन साधू बने, ब्रह्मचारि धनहीन ।
रोगी सुरप्रेमी तिया, वृद्ध पतिव्रत कीन ॥६॥

शक्तिहीन साधू होता है, निर्धन ब्रह्मचारी, रोगग्रस्त देवताका भक्त होता है और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है ॥६॥

नान्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशीसमा ।
न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥ ७ ॥

सोरठा–अन्न वारि सम दान, नहीं द्वादशी सरिस तिथि ।
गायत्री बढ़ि आन, मंत्र मातु बढ़ि सुर नहीं ॥७॥

अन्न जलके समान कोई दान नहीं है, द्वादशीके समान तिथि, गायत्रीसे बढ़कर कोई मंत्र नहीं है, न मातासे बढ़कर कोई देवता है ॥७॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिरः ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥ ८ ॥

दोहा–विष तक्षकके दंतमें, माखिनके शिरसंग ।
बीछिनके पूंछन बसै दुष्टनके सब अंग ॥८॥

सांपके दांतमें विष रहता है, मक्खीके शिरमें विष है, बिच्छूके पूंछमें विष है, सब अंगोंमें दुर्जन विषहीसे भरा रहता है ॥८॥

पत्युराज्ञां विना नारीह्युपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुराहरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ ९ ॥

वरवै–बिनु पति आयसु बरत करत जो नारि ।
हरत आयु पिवकी अरु नरक सिधारि ॥९॥

पतिकी आज्ञा विना उपवास व्रत करनेवाली स्त्री स्वामीकी आयु हरती है और वह स्त्री आप नरकमें जाती है ॥९॥

न दानैः शुध्यते नारी ह्युपवासशतैरपि ।
न तीर्थसेवया तद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

मं०छ०—न शुद्ध तीर्थ जान ते, न सो उपाय दानते ।।
यथा सुतीय पीयके, पखारि पांय पीयके ।१०।।

न दानोंसे, न सैकड़ों उपवासोंसे, न तीर्थके सेवनसे स्त्री वैसी शुद्ध होती है, जैसी स्वामीके चरणोदकसे ।।१०।।

पादशेषंपीतशेषं संध्याशेषं तथैव च ।
शुनो मूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

दोहा—चरणोंके धोते बचो, पीने संध्याशेष ।
श्वान मूत्र सम जासु पी, चांद्रायण निर्दोष ।।११।।

पांव धोनेसे जो जल शेष रह जाता है, पीनेसे जो बच जाता है और संध्या करने पर जो अवशिष्ट जल रहे वह कुत्तेके मूत्रके समान है, उसको पीकर चांद्रायण का व्रत करना चाहिये ।।११।।

दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन स्नानेन शुद्धिर्नतु चन्दनेन ।
मानेन तृप्तिर्नतु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्नतु मण्डनेन ॥१२॥

सवैया—करमें छबि दान दिये भरती न रतीभर कंकनके पहिरे ।
लहु शुद्ध शरीर नहान किये नहीं चंदन लेपहिते गहिरे ।
सन्मानसे तृप्त जो होत नितै न बने तस भोजनके बलते ।
नर ज्ञानहि युक्त समुक्ति लहै न जटा अरु छापहिके बलते ।।१२।।

दानसे हाथ शोभता है, कंकणसे नहीं, स्नानसे शरीर शुद्ध होता है चंदनसे नहीं, सम्मानसे तृप्ति होती है, भोजनसे नहीं, ज्ञानसे मुक्ति होती है, छाप तिलकादि भूषणसे नहीं ।।१२।।

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम् ।
आत्मरूपं जले पश्यञ्छक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १३ ॥

सोरठा—क्षौर किये घर नाइ, जलमें देखे रूप निज।
घसि उपलै ते लाइ, चंदन इंद्रौ धन नशै ॥१३॥

नाईके घरपर बाल बनानेवाला, पत्थरसे लेकर चंदन लेपन करनेवाला, अपने रूपको पानीमें देखनेवाला इन्द्र भी हो तो उसकी लक्ष्मीको हरलेते हैं ॥१३॥

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञा करी वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥ १४ ॥

तो.छं०—कुंदरू वरबुद्धिही कुंदकरे, वच सद्यहि तासु प्रकाश करै
अवला वलवान हि आसु हरे, तेहि पुरण क्षीर तुरंत भरै ॥१४॥

कुंदरू शीघ्र ही बुद्धि हरलेता है और वच झटपट बुद्धि देती है, स्त्री तुरंत ही शक्ति हरलेती है, दूध शीघ्र ही वल कर देता है ॥१४॥

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनय गुणोपेतः।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ १५ ॥

दोहा— कामिनी लक्ष्मी विनययुत, सुत गुण भूषित भेष।
पौत्र सुधन जो होय तो, स्वर्गहि कहा विशेष ॥१५॥

यदि कांता है, यदि लक्ष्मी वर्तमान है, यदि पुत्रसुशीलतादि गुणसे युक्त है और पुत्रके पुत्रकी उत्पत्ति हुई हो फिर देवलोकमें इससे अधिक क्या है ॥१५॥

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां संपदः स्युः पदेपदे ॥ १६ ॥

दोहा—जिन सज्जन मन माहिं नित, जामत पर उपकार।
बेगि तासु नशु विपति अति, पग पग मिलु धन मार ॥१६॥

जिन सज्जनोंके हृदयमें परोपकार जागता रहता है उनकी विपत्ति नष्ट होती है और पदपदमें संपत्ति होती है ॥१६॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।

ज्ञाने नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाःपशुभिःसमानाः ॥ १७ ॥

दोहा—निद्रा भोजन भोग भय, मनुज सरिस पशु माहिं ।
मतिहि नरन केबाढ़ि है, तेहि विन पशुसम आहिं ।।१७।।

भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओंके समानही हैं, मनुष्योंको केवल ज्ञानमें अधिक फरक है ज्ञानसे रहित नर पशु के समान है ।।१७।।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-
र्दूरीकृताः करिवरेण मादान्ध बुद्धया ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥ १८ ॥

खा. छ—ज्यौं मदान्ध गज कर्ण हिलाई, पिवते मधुकहं अलिन दुराई ।
गे कपोल दुहुं भूषण वाही, भंवर उड़ी कमल । पर जाही ।।१८।।

यदि मदांध गजराजने मधुके अर्थी भौंरोंके मदांधतासे कर्णतालोंसे दूर किया तो यह उसीके दोनों गण्डस्थलोंकी शोभाकी हानि भई भौंरे फिर विकसित कमलमें वसते हैं, तात्पर्य यह है कि, हदि किसी निर्गुण मदाम्ध राजा वा धनीके निकट कोई गुणी जा पड़े उस समय मदान्धोंको गुणीका आदर न करना, मानो अपनी लक्ष्मीकी शोभाकी हानि करनी है, काल निरवधि है और पृथ्वी अनंत है गुणीका आदर कहीं न कहीं किसी न किसी समय होगाही ।।१८।।

राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बालयाचकौ ।
परदुःखं न जानन्ति ह्यष्टमो ग्रामकण्टकः ॥१९॥

दोहा—राजा वेश्या अनल यम, बालक याचक चोर ।
ग्रामकण्टको आठ यह, परदुख लखे न थोर ।।१९।।

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवां ग्राम कंटक अर्थात् ग्रामनिवासियोंको पीडा देकर अपना निर्वाह करनेवाला ये दूसरेके दुःखको नहीं जानते ।।१९।।

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥२०॥

दोहा—का तिय तू नीचे लखति, गिरेउ कछू महि बीच ।
तरुणाई मोती गयो, तैं नहिं जानत नीच ॥२०॥

हे बाले ! तू नीचे क्यों देखती है पृथ्वीपर तेरा क्या गिर पड़ा ? तब स्त्रीने कहा, रे रे मूर्ख ! तू नहीं जानता कि, मेरा तरुणतारूप मोती चला गया ॥२०॥

व्यालश्रियाऽपि विफलापि सकण्टकाऽपि
वक्रापि पङ्किलभवाऽपि दुरासदाऽपि ।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तो-
रेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥२१॥

सोरठा—वक्र दुर्लभ अहिवास, विफल पंकजनि कंटकी ।
सकल दोष किय नास, गंध गुणै केतकिहितैं ॥२१॥

हे केतकी ! यद्यपि तू सांपोंका घर है, विफल है, तुझमें कांटे भी हैं, टेढ़ी है, कीचड़में तेरी उत्पत्ति है और तू दुःखस मिलती भी है, तथापि एक गंधके गुणसे सब प्राणियोंकी बंधु होरही है, निश्चय है कि, एक भी गुण दोषोंका नाश कर देता है ॥२१॥

इति वद्धचाणक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

इति चाणक्यनीतिदर्पणहिन्दीटीका समाप्ता ।

समाप्तोऽयं ग्रंथः

पुस्तकें मिलने के स्थानः—

१. **खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, सातवीं खेतवाड़ी, खम्बाटा लेन, बम्बई—४०० ००४.**
२. **गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस व बुकडिपो, अहिल्याबाई चौक, कल्याण जि. ठाणे (महाराष्ट्र)**
३. **खेमराज श्रीकृष्णदास चौक, वाराणसी (उ. प्र.)**

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

